हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष ५१ अंक १२

वासन्तिक नवरात्र, 'व्यय' सम्बत् २०५० विक्रमी

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, बुधवार तदनुसार २४ मार्च, १९९३ से

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, बुधवार (२४ मार्च, ९३)

वासन्तिक नवरात्र प्रारम्भ। प्रातः-काल सतैल स्नान। ध्वजारोहण। सम्बत्सर-फल-श्रवण। घट- स्थापन। चण्डी-पाठारम्भ। सप्त-दिवसीय पाठ-कर्ता 'सप्त-शती' के प्रथम अध्याय का पाठ करें।

चैत्र शुक्ला द्वितीया, बृहस्पतिवार (२५ मार्च, ९३)

चण्डी-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ-कर्ता अध्याय २-३ का पाठ करें। शुक्र-वृद्धत्व प्रारम्भ।

चैत्र शुक्ला तृतीया, शुक्रवार (२६ मार्च, ९३)

सौभाग्य-सुन्दरी-व्रत, गौरी-दोलोत्सव। मन्वादि-तृतीया। मत्स्यावतार जयन्ती। गण-गौरी-व्रत। चण्डी-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में चौथा अध्याय पढ़ें।

चैत्र शुक्ला चतुर्थी, शनिवार (२७ मार्च, ९३)

वैनायकी श्रीगणेश व्रत। श्रीगणेश-दमनकोत्सव। चण्डी-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय ५-६-७-८।

चैत्र शुक्ला पञ्चमी, रविवार (२८ मार्च, ९३)

श्रीराम-राज्य-महोत्सव। कल्पादि-पञ्चमी। मीनावतार जयन्ती। चण्डी-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय ९-१०। शुक्रास्त पश्चिम में ।

चैत्र शुक्ला षष्ठी, सोमवार (२९ मार्च, ९३)

श्रीस्कन्द-दमनकोत्सव । श्रीसूर्य -षष्ठी - व्रत। चण्डी - पाठ । सप्त - दिवसीय पाठ में ११ वाँ अध्याय पढ़े ।

चैत्र शुक्ला सप्तमी, मङ्गलवार (३० मार्च, ९३

श्रीभास्कर-दमनक पूजा। श्रीभवानी-जयन अन्नपूर्णा-परिक्रमा। चण्डी-पाठ। सप्त-दिवसीय पा में अध्याय १२-१३। रात्रि में महा-निशा-पूजा।

चैत्र शुक्ला अष्टमी, बुधवार (३१ मार्च, ९३)

महा अष्टमी व्रत। तारा-जयन्ती श्रीभवानी जयन्ती। कुमारी- पूजन।

चैत्र शुक्ला नवमी, बृहस्पतिवार (१ अप्रैल, ९३)

श्रीराम-नवमी व्रत। मध्याह्न (१२।१५ से २।३३) कर्क लग्न में श्रीराम-जन्म-महोत्सव। अयोध्या में श्रीराम-जन्म-भूमि के दर्शन। रामावतार जयन्ती। नवरात्र का पारण-पूजन-पूर्वक क्षमापण-स्तोत्र-पाठ, नीराजन, होम आदि। शुक्रोदय पूर्व में ।

चैत्र शुक्ला दशमी, शुक्रवार (२ अप्रैल, ९३)

चैत्र शुक्ला एकादशी, शनिवार (३ अप्रैल, ९३)

कामदा एकादशी व्रत ।

चैत्र शुक्ला द्वादशी - त्रयोदशी, रविवार (४ अप्रैल)

एकादशी व्रत पारण। विष्णु-दमनकोत्सव प्रदोष व्रत। अनङ्ग-त्रयोदशी व्रत। महावीर -जयन्ती

चैत्र शुक्ला चतुर्दशी, सोमवार (५ अप्रैल, ९३)

श्रीशिव, नृसिंह दमनकारोपण पूजन। हनुम -जयन्ती, दक्षिण में प्रसिद्ध।

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, मङ्गलवार (६ अप्रैल, ९३)

स्नान, दान, व्रत की पूर्णिमा। सर्व-देव दमनकोत्सव। वस्त्र-दान से सौभाग्य-प्राप्ति। वैशाख व्रत के यम-नियम का पालन प्रारम्भ।

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

◆

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग–२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
९०६७८३

◆

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

◆

शुल्क विदेश में
हवाई डाक समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क **मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी** के नाम से **चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद** के पते पर भेजें ।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग–२११००६

सभी पाठक, सहायक एवं लेखक-बन्धुओं
को
चैत्र नवरात्र की हमारी शुभ-कामनाएँ

वर्ष ५१] **[अङ्क १२**
फाल्गुन, 'पार्थिव' सम्वत् २०४९ वि० **मार्च, १९९३**

* * *

श्रीदुर्गायै नमः

सभी मन्त्रों में मातृका अर्थात् मूलाक्षर में रहनेवाली अधिष्ठातृ देवी, सभी शब्दों में निहित ज्ञान-रूपिणी, सभी प्रकार के ज्ञानों में चिन्मयातीता रूपी ज्ञान, शून्यों (महा-प्रलय के बाद की अवस्था) में शून्य-साक्षिणी तथा जिसके ऊपर कोई श्रेष्ठ सत्ता नहीं है, उस जगज्जननी दुर्गा को हम नमस्कार करते हैं ।

इस अंक में

- आह्वान … ३५४
- अनूठे विक्रम सम्वत् का ५० वाँ वर्ष … ३५५
- 'व्यय' सम्वत्सर का फल … ३५६
- नव-रात्र … ३५८
- उत्तर प्रदेश के देवी-मन्दिर … ३५९
- चैत्र-मास के देवी-व्रत … ३६०
- दुर्गा-भक्त सन्त … ३६०
- मन्त्र-योग का रहस्य … ३६१
- पञ्चाग्नि-तपस्या … ३६५
- तारा : एक साधना … ३६७
- **साधन-माला** … ३६९-४०४

'दुर्गा' नाम-जप प्रयोग, 'सप्तशती'-प्रयोग, श्रीदुर्गोपनिषत् (अथर्वशीर्ष), श्रीदुर्गा आसुरी-कल्प, परशुराम-कृत श्रीदुर्गा-स्तोत्र, श्रीअर्जुन-कृत दुर्गा-स्तवन, श्रीवाराही मन्त्र-प्रयोग, श्रीशिव कवच, सर्व-यन्त्र-मन्त्र-तन्त्रोत्कीलन-स्तोत्र, सप्तशती (पद्यानुवाद) के प्रयोग ।

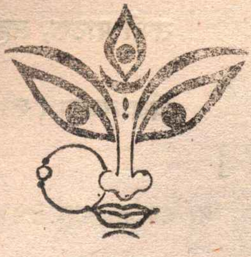

आह्वान

मातः दुर्गे ! सिह-वाहिनी, त्रिशूल-धारिणी, वर्म-आवृत सुन्दर शरीर-धारिणी जय-दायिनी मातः ! तेरी प्रतीक्षा में भारत है। तेरी उसी मंगल-मयी मूर्ति को देखने के लिए, उत्सुक। सुन हे मातः! तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान हो।

मातः दुर्गे! योग-शक्ति का विस्तार कर। हम हैं तेरी प्रिय आर्य सन्तान। हममें लुप्त शिक्षा, चरित्र, मेधा-शक्ति, श्रद्धा-भक्ति, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य-ज्ञान का विकास कर, जगत् में वितरण कर। हे दुर्गति-नाशिनी जगदम्ब ! मनुष्य की सहायता के लिए प्रकाशमान हो। —श्री अरविन्द

भारत के अनूठे विक्रम सम्वत्

का

२१ वीं शती का ५० वाँ वर्ष

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, प्रयाग

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा बुधवार सम्वत् २०५० तदनुसार २४ मार्च, १९९३ को भारत के अनूठे विक्रम सम्वत्सर की २१ वीं शती के नवीन ५० वें वर्ष का श्रीगणेश होगा। सारे विश्व में प्रचलित सम्वत्सरों में कदाचित् 'विक्रम सम्वत्' ही अकेला है, जिसका अपना 'नाम' भी होता है। सम्वत् २०५० वि० के दो नाम हैं—(१) चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, बुधवार (२४ मार्च, १९९३) से अधिक भाद्रपद शुक्ला एकादशी, शुक्रवार (२७ अगस्त, १९९३) तक **'व्यय' नामक सम्वत्सर** तथा (२) अधिक भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, शनिवार (२८ अगस्त, १९९३) से चैत्र, अमावास्या (१० अप्रैल, १९९४) तक **'सर्व - जित्' नामक सम्वत्सर।**

महा-कवि **तुलसीदास** की प्रसिद्ध अनुभूत वाणी है—**'कल-जुग केवल 'नाम' अधारा'**। धार्मिक शिक्षा के अभाव में आज विद्वानों तक को 'नाम' के रहस्य का ज्ञान नहीं है। जो 'नाम' आधार है, उसका क्या महत्त्व है ? 'आधार' से क्या तात्पर्य है ? इन प्रश्नों पर आज किसी को विचार करने का समय नहीं है। फिर, क्या आश्चर्य कि आधुनिक जीवन निराधार होकर विविध प्रकार के झंझावातों में घिर कर लोगों को असह्य-सा प्रतीत होता है।

'आधार' है नींव। यदि 'नींव' सुदृढ़ होगी, तो उस पर बना भवन भी सुरक्षित आश्रय दे सकेगा। अथवा 'आधार' है जड़। यदि 'जड़' को समुचित पोषण मिलेगा, तो वह अंकुरित, पुष्पित होकर अभीष्ट फल दे सकेगी। भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति **सङ्कल्प** के महत्त्व को जानते हैं। दैनिक सन्ध्योपासन से लेकर छोटी-से-छोटी पूजा और बड़े-से-बड़े यज्ञानुष्ठान के प्रारम्भ में **'सङ्कल्प'** करने का विधान है। उस सङ्कल्प में भी 'नाम' का महत्त्व स्वीकार किया गया है। यथा—**'अमुक'-नाम-सम्वत्सरे।** यहाँ **'अमुक'** शब्द के स्थान पर 'सम्वत्सर' के नाम का ही उच्चारण किया जाता है। बुधवार, दिनाङ्क २४ मार्च, १९९३ से प्रत्येक धर्म-निष्ठ भारतीय अपने सङ्कल्प में नव-वर्ष के शुभ नाम का उच्चारण करेगा—**'व्यय-नाम-सम्वत्सरे।'** इसी नाम का उच्चारण वर्ष पर्यन्त (१० अप्रैल, १९९४ तक) होगा। अधिक भाद्रपद शुक्ला द्वादशी से यद्यपि सम्वत्सर का नाम 'सर्व-जित्' होगा, तो भी सङ्कल्प में वर्ष-पर्यन्त **'व्यय'-नाम-सम्वत्सर** का ही उल्लेख होगा।

अन्य नव-वर्षोत्सवों में लोग मनोरञ्जक कार्य-क्रम करके अपने को सन्तोष देते हैं और समझते हैं कि उसी प्रकार सारे वर्ष उनका मनोरञ्जन होता रहेगा, किन्तु **भारतीय विक्रम सम्वत् के नवीन वर्ष को मनाने की विशेष विधि है,** जो कहीं अधिक ज्ञान-विज्ञान-मय, मनोरञ्जक और कल्याण-कारिणी है। इस विधि के अनुसार नव-वर्ष के आरम्भिक प्रथम दिन में विधि-पूर्वक **तेल लगाकर स्नान** करना होता है। तब, जल-पूर्ण ताम्र-पात्र को हाथ में लेकर, उत्तराभिमुख होकर 'उपवास', 'व्रत' अथवा 'सप्तशती-पाठ' आदि जो भी अनुष्ठान, पूजा करने का विचार हो, उसके लिए **'सङ्कल्प'** करे। फिर, अपने निवास-स्थान पर ध्वजारोहण कर, **नव-वर्ष के स्वामी का मानसिक पूजन** कर, **'सम्वत्सर-फल' को पढ़े या सुने।**

तदनन्तर, **निम्ब-वृक्ष (नीम) की नई पत्तियों को चबाकर खाए।** साथ ही प्यासे प्राणियों के लिए **जल का दान** देकर 'उपवास', 'व्रत', 'सप्तशती-पाठ' अथवा पूजा आरम्भ करे।

अस्तु ! नव-वर्ष मनाने की उक्त विधि पर ध्यान से विचार करें और उसका यथा-सम्भव पालन कर, पूरे वर्ष की अच्छी-बुरी सभी घटनाओं के पूर्वाभास एवं मर्म के प्रति सचेत बनें। इससे अपने निजी जीवन एवं सामाजिक जीवन को सुरक्षित तथा सुखी बनाए रखने का विलक्षण ज्ञान हो सकेगा।

'व्यय' सम्वत्सर का फल

'कुल-वाणी-रत्न' पं० सतीशचन्द्र उपाध्याय

भारतीय नव-वर्ष 'श्री व्यय' नामक सम्वत्सर २०५० विक्रमी का शुभारम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा बुधवार (२४ मार्च, सन् १९९३) से हो रहा है। पूजा-पाठ एवं अनुष्ठानादि के सङ्कल्प आदि में वर्ष-पर्यन्त 'व्यय' नाम का ही प्रयोग होगा, यद्यपि अधिक भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, शनिवार (२८ अगस्त, १९९३ से **सर्वजित् नामक सम्वत्सर** आ जाएगा। श्री सम्वत् २०५० वि० का आकाशीय दिव्य मन्त्रि-मण्डल निम्न प्रकार है—**१ राजा**—बुध, २ **मन्त्री**, दुर्गेश और **मेघेश**—मङ्गल, ३ **सस्येश**, **धनेश** और **निरसेश**—शुक्र, **४ धान्येश**—गुरु, **५ फलेश**—शनि, ६ **रसेश**—चन्द्र।

सम्वत्सर-फल सुनने की विधि—नव वर्ष श्री 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० के प्रथम दिन अर्थात् २४ मार्च, १९९३ बुधवार को प्रातः-काल तेल लगाकर स्नान कर सामान्य पूजन (सन्ध्या आदि) करे। फिर अपने गृह के **शीर्ष-स्थान** पर ध्वजा फहराएँ। किसी ब्राह्मण से **मङ्गल-पाठ** (सुमुखो च एकदन्तश्च ··) सुने या स्वयं पढ़े। इसके वाद यदि सम्भव हो, तो श्रीगुरु, श्रीगुरु-पत्नी अथवा श्रीगुरु-देव के पुत्रों का सामर्थ्यानुसार पूजन करे अथवा घर पर ही उन सबका **मानसिक पूजन** करे। इसके बाद, किसी ज्योतिषी से **सम्वत्सर आदि का फल** सुने। ज्योतिषी न मिलें, तो परिचित ज्योतिषी अथवा भगवान् या भगवती का ध्यान कर, उनका **मानस-पूजन** कर स्वतः फल पढ़े।

सम्वत्सर आदि का फल सुनने का महत्त्व—१. तिथि, २. वार, ३. नक्षत्र, ४. योग एवं ५. करण—इन पाँचों अङ्गों का फल सुनने से **गङ्गा-स्नान का फल** प्राप्त होता है। **तिथि के फल-श्रवण से** अचल राज्य-सम्पत्ति, **वर्ष के मन्त्री के फल-श्रवण से** कुशलता, **अन्न के स्वामी के फल-श्रवण से** लक्ष्मी, **रस के स्वमी के फल-श्रवण से** बुद्धि, धर्म-ज्ञान तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। **मेघेश के फल-श्रवण से** वाणी रस-मयी होती है। **कृषि के स्वामी के फल-श्रवण से** सब प्रकार का कल्याण होता है।

नव-वर्ष के प्रथम दिन औषधि तथा उसके सेवन का फल—पारिभद्र (देवदारु या नीम वृक्ष) के कोमल पत्तों, पुष्पों को लेकर, उसका चूर्ण बनाएँ। उसमें काली मिर्च, सेंधा नमक, हींग, जीरा एवं अजमोदा मिलाएँ। इसे खाने से वर्ष पर्यन्त **रोगों की शान्ति** होती है।

सम्वत्सर एवं मन्त्रि-मण्डल का फल—(१) **'व्यय' सम्वत्सर का फल**—लोग व्यय-शील, उद्विग्न तथा दुःख से पीड़ित रहेंगे।

(२) **सर्व-जित् सम्वत्सर-फल**—लोग देव-भाव को प्राप्त होंगे तथा कुछ शासक व्यक्ति वीर-गति को प्राप्त हो जाएँगे।

(३) राजा बुध का फल—इस वर्ष पृथ्वी पर जल की अधिकता, घर - घर में विवाहादिक मङ्गल - कार्य, व्यक्तियों में दान देने तथा दया करने की प्रवृत्ति का जन्म होना। सभी धन - धान्य से सम्पन्न रहेंगे। यह फल नर्मदा नदी के उत्तर कश्मीर, कम्बोज तथा कलिङ्ग प्रदेश में विशेष रूप से घटित होगा।

(४) मन्त्री मङ्गल का फल—वर्षा की कमी, अन्न की महँगाई, अग्नि - काण्ड की अधिकता, चोरों की वृद्धि तथा राष्ट्रों में युद्ध होंगे। बाह्लिक तथा मालवा में यह फल विशेष रूप से घटित होगा।

(५) कृषि के स्वामी शुक्र का फल—सभी रोग-मुक्त और निर्भय होंगे। वृक्षों में पुष्प तथा वर्षा की अधिकता होगी।

(६) दुर्गेश मङ्गल का फल—लोगों को अनेक प्रकार के दुःख और विछोह सहने होंगे। क्रय-विक्रय में विशेष लाभ नहीं होगा।

(७) धनेश शुक्र का फल—सभी समान रूप से धनी, सुखी एवं क्रय - विक्रय पर निर्भर रहेंगे। शासक लोग योजनाओं को पूरा करने में तत्पर रहेंगे।

(८) रसेश चन्द्र का फल—ईख रस, तेल आदि द्रव पदार्थ की अधिकता, यज्ञादि की बहुलता होगी। गाएँ आदि अधिक दूध देंगी। कोंकण तथा मालवा में यह फल विशेष दृष्टि-गत होगा।

(९) धान्येश गुरु का फल—धन, धान्य एवं फलादि की अधिकता। प्रचुर वर्षा। सभी प्रसन्न रहेंगे। पौण्ड्र तथा विदर्भ प्रान्तों में विशेष रूप से।

(१०) निरसेश शुक्र का फल—कपूर, अगरु आदि गन्ध पदार्थ, स्वर्ण, मोती, वस्त्र एवं धन की वृद्धि। विशेष कर मालवा-प्रान्त में।

(११) फलेश शनि का फल—फलों एवं पुष्पों की हानि। ओला-पत्थर, पाला पड़ने का भय। रोगों से पीड़ा तथा चोर एवं हिंसक पशुओं से भय।

(१२) मेघेश मङ्गल का फल—कहीं अधिक, तो कहीं कम वर्षा। मुख्यतः द्रविड़ तथा गौड़ प्रान्तों में।

(१३) सूर्य के आर्द्रा-प्रवेश का फल—आषाढ़ शुक्ला तृतीया को सूर्यदेव आर्द्रा नक्षत्र में मङ्गलवार के दिन, पुनर्वसु नक्षत्र के समय, ध्रुव-योग में, प्रातः - काल ७ बजकर ३२ मिनट पर प्रवेश करेंगे। तृतीया में प्रवेश—बाधा-कारक, मङ्गलवार—मृत्यु (कष्ट)-कारक, पुनर्वसु नक्षत्र—अभिवृद्धि - कारक, ध्रुव-योग—प्रजा एवं शासक के मन में चञ्चलता तथा उषा - काल—जगत् पर विपत्ति का फल प्रदान करता है। वर्षा ५० प्रतिशत पहाड़ों पर, २५ प्रतिशत वायु में तथा २५ प्रतिशत पृथ्वी पर होगी। रोहिणी-वास पर्वत पर है।

चैत्र-मास का फल—पुनर्वसु के मङ्गल से भैंसों की रोगों से मृत्यु, शतभिषा के बुध से महामारी जैसे रोगों की उत्पत्ति। उत्तरा भाद्रपद के शुक्र अन्न-धन से जनता को सुखी करते हैं। तीन ग्रह—१ बुध, २ शुक्र एवं ३ गुरु प्रतिपदा से वक्री हैं। बुध, त्रयोदशी २१ मार्च, ९३ से मार्गी हो जाएगा। वक्री ग्रह किसी प्रकार का सङ्कट उपस्थित करते हैं। १४ मार्च, ९३ के दिन २/२९ बजे सूर्यदेव मीन-राशि में प्रवेश करेंगे।

चैत्र शुक्ल-पक्ष में, खाद्य-पदार्थों का मूल्य सामान्य, सराफा-बाजार में मन्दी, चाँदी में सामान्य तेजी, दलहन एवं तेलहन सस्ता। उपल - वृष्टि, वर्षा, अग्नि-काण्ड तथा महा-मारी की सम्भावना। साम्प्रदायिक तनाव तथा अपहरण की घटनाएँ सम्भव हैं।

नव-रात्र

• पं० रामकृष्ण तिवारी, सैदाबाद, प्रयाग

'नव-रात्र' वर्ष में चार बार आते हैं—(१) चैत्र, (२) आश्विन, (३) आषाढ़ और (४) माघ में । चैत्र, आश्विन, आषाढ़ और माघ—इन चारों मासों की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक 'नव - रात्र' का पूजन-विधान है । चैत्र और आश्विन के 'नव-रात्र' प्रसिद्ध हैं । चैत्र 'नव-रात्र'—**'शयन'** तथा आश्विन 'नव-रात्र'—**'बोधन'** कहलाते हैं । आषाढ़ और माघ के 'नव-रात्र'—'गुप्त नव-रात्र' कहलाते हैं ।

'नवरात्र-व्रत' हिन्दुओं का बड़ा प्राचीन धार्मिक अनुष्ठान है । इसका महत्त्व सदा रहा है और आज भी यह पूर्व-वत् लोक-प्रिय बना हुआ है । इस **'व्रत'** का उल्लेख **'श्रीमद्-देवी-भागवत'** में आया है । उसमें इस व्रत के एक उपाख्यान में लिखा है कि सीता जी की पुनर्प्राप्ति और शत्रु पर विजय पाने पर भगवान् रामचन्द्र ने इसका अनुष्ठान किया था । इससे प्रकट होता है कि भगवान् रामचन्द्र के बहुत पहले से इसका प्रचार रहा है ।

'नव-रात्र' के एक दिन पूर्व अर्थात् अमावास्या को पूजा की सब सामग्री एकत्र करे । उस दिन **एक बार भोजन** करे । शुद्ध मिट्टी और गोबर से **पूजन-स्थान को लीपे** । लीपे हुए पूजा-स्थान के मध्य में **सुन्दर चौकोर 'वेदी'** बनाए । रङ्ग-बिरङ्गी झण्डियों, झालरों, केले और आम के पत्तों तथा विविध फूल-मालाओं से **पूजा-स्थान को यथा-शक्ति सुसज्जित** करे ।

प्रतिपदा के दिन नदी या घर में **सतैल - स्नान** करे । फिर पहले अपनी नित्य-क्रिया **सन्ध्योपासना** आदि करे । तब, पूर्व-निर्मित **'वेदी'** पर सिंहासन रखकर रेशमी वस्त्र बिछाकर **श्रीदुर्गा जी की मूर्त्ति की स्थापना** करे । यदि मूर्त्ति - स्थापना न कर सके, तो रेशमी वस्त्र पर **'श्रीदुर्गा - यन्त्र'** अथवा **'श्रीदुर्गा का चित्र'** स्थापित करे । फिर, 'वेदी' के समीप शास्त्रोक्त रीति से 'पञ्च - पल्लव', तीर्थ-जलों से पूर्ण **'कलश'** की वेद-मन्त्रों से **स्थापना** करे । 'कलश' को श्वेत वस्त्र, नारियल और रक्त-वस्त्र से ढँककर रक्खे । तदनन्तर, **सङ्कल्प** करके **'गण-पति'**, **'नव-ग्रहों'** तथा **'षोडश-मातृका देवताओं'** का यथा-शक्ति पूजन करे । इसके बाद भगवती दुर्गा का ध्यान पढ़कर आवाहन करे । उनका पूजन करे और **'सप्तशती-पाठ'** आरम्भ करे ।

सप्त-शती-पाठ का क्रम विशेषतः **प्रतिपदा से नवमी** तक प्रचलित है । यदि एक से अधिक 'पाठ' करे, तो **प्रति-दिन** वृद्धि करता जाए, ह्रास न करे । **अष्टमी के दिन होम - पूजादि** करे । **नवमी के दिन कन्या-पूजन, कन्या-भोजन** कराकर 'व्रत' की समाप्ति करे । इस प्रकार 'नव - रात्र' में दिन - रात **'अखण्ड दीप-ज्योति'** एवं **'सप्तशती - पारायण'** से देवी की कृपा की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं । शुद्ध दृढ़ चित्त से सभी कर्म सम्पन्न करे ।

उ० प्र० के मन्दिर

मेले-त्योहारों की धरती–भारत में **'नव-रात्र' महोत्सव** विशद-रूप से मनाया जाता है। भारत के इतिहास पर दृष्टि-पात करने से यह प्रकट होता है कि भारत में प्राचीन काल से ही **'नव-रात्र' पर्व** का अस्तित्व रहा है। **शक्ति-उपासना** से जुड़े इस महिमा-मय पर्व का आयोजन उत्तर प्रदेश में अत्यन्त भव्य-रूप से किया जाता है। इस अवसर पर जहाँ भक्त-जन भजन-पूजन-यजन में व्यस्त रहते हैं, वहीं जगज्जननी के मन्दिरों में दर्शनार्थ जाकर अपने को कृत-कृत्य करते हैं।

पौराणिक आख्यानों से जुड़े **'नव-रात्र'** वर्ष में चार बार–**(१) चैत्र**, (२) **आश्विन**, (३) **आषाढ़** और (४) **माघ-मास** में होते हैं किन्तु सामान्यतया **चैत्र व आश्विन मास के नव-रात्र** ही पूर्ण विधि-विधान-पूर्वक मनाए जाते हैं। चैत्र, आश्विन, आषाढ़ और माघ मासों की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक नव-रात्र का पूजन-विधान शास्त्रों में दिया हुआ है। चैत्र और आश्विन मास के नव-रात्रों का विशेष प्रचार इसलिए हो गया क्योंकि ग्रीष्म तथा शीत-काल के आने पर ज्वर अथवा अन्य रोगादि की उत्पत्ति का कोप रहता है। अतएव इनकी शान्ति के निमित्त इन दोनों ऋतुओं में '**नव-रात्र**' को लोग विशेष रूप से मनाते हैं।

'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में माँ पार्वती, भगवान् शङ्कर से प्रश्न करती हैं–"**हे देवेश ! मैं नव-रात्र के विधान को सुनना चाहती हूँ।**" तब भगवान् शङ्कर कहते हैं–"**नव-रात्र नौ शक्तियों से संयुक्त है। इसमें एक-एक तिथि में एक-एक शक्ति के पूजन का विधान है।**" इसी प्रकार **'रामायण'** और **'गीता'** की भाँति सम्पूर्ण भारत में लोक-प्रिय **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** में भगवती का वचन है कि शरत्-काल (शारदीय नव-रात्र) में वार्षिक महा-पूजा की जाती है। **'दुर्गा-सप्तशती'** की प्राचीनता तो सर्व-विदित है ही। इस प्रकार **'नव-रात्र महा-पर्व'** के विधान से भारत की पुण्य-धरा पर वास करनेवाला प्रायः प्रत्येक आस्तिक व श्रद्धालु सदियों से जुड़ा रहा है।

नव-रात्र महा-पर्व के अवसर पर विभिन्न देवियों के मन्दिरों पर विशिष्ट पूजन तो होते ही हैं, साथ ही शक्ति-पीठों पर 'नव-रात्र'-पर्यन्त मेले का-सा दृश्य उपस्थित हो उठता है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो उत्तर प्रदेश की धरा अनेक प्रख्यात व जाग्रत शक्ति-पीठों के कारण विशेष रूप से महिमा-मण्डित हुई है। इस क्रम में सुरकण्डा देवी, चन्द्रवदनी-कुञ्जापुरी (**टिहरी**); नन्दा देवी (**चमोली**); अम्बिका गौरी, महिष-मर्दिनी, ज्वाला देवी, चामुण्डा, भुवनेश्वरी देवी मन्दिर (**पौड़ी**); शीतला देवी (**चमोली**); पूर्णागिरि (**पिथौरागढ़**); नन्दा देवी, चितई देवी (**अल्मोड़ा**); नैना देवी (**नैनीताल**); गङ्गोली हाट, सती-कुण्ड, दक्ष प्रजापति महा-देव, राज-राजेश्वरी देवी (**श्रीनगर**); माया देवी, चण्डी देवी, मनसा देवी (**हरिद्वार**); शाकम्भरी देवी (**सहारनपुर**); दुर्गा मन्दिर (**मुजफ्फरनगर**); वाराही देवी, बुद्धा देवी (**कानपुर**); बाँगरमऊ, चण्डिका जी (**उन्नाव**); श्रीकाली मन्दिर (**झाँसी**); देवी पाटन (**गोण्डा**); शीतला मन्दिर (**जौनपुर**); काली जी का मन्दिर, चन्द्रिका देवी (**लखनऊ**); ललिता देवी (**सीतापुर**); चन्द्रिका देवी (**महोबा**); अन्नपूर्णा जी, दुर्गा जी, विशालाक्षी देवी (**वाराणसी**); छिन्न-मस्ता देवी, दुर्गा जी (**रामनगर**); कल्याणी देवी, ललिता देवी, अलोपशङ्करी देवी, कड़ा-धाम, इमिलियन देवी (**इलाहाबाद**); श्री विन्ध्य-वासिनी देवी (**मिर्जापुर**) जैसे प्रख्यात देवी-मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

चैत्र-मास के देवी-व्रत

(१) **चैत्र शुक्ला द्वितीया—ब्रह्मा के साथ ब्राह्मी शक्ति** का हविष्यान्न और गन्ध आदि से पूजन कर, व्रती पुरुष समस्त मनोवाञ्छित कामनाओं को पाकर ब्रह्म-पद प्राप्त करता है।

(२) **चैत्र शुक्ला तृतीया—वर - प्राप्ति की इच्छा** रखनेवाली कन्या तथा **पुत्र और पति की मङ्गल - कामना** करनेवाली विवाहिता नारी, **श्रीशङ्कर के साथ श्रीगौरी देवी** की सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टी की प्रतिमा बनाएँ। गन्ध, पुष्प, दूर्वा आदि उपचारों तथा सुन्दर वस्त्राभूषण से विधिवत् उसका पूजन करे। फिर सधवा स्त्रियों और सुलक्षणा कन्याओं को सिन्दूर, काजल तथा वस्त्राभूषण से सन्तुष्ट करे। तदनन्तर प्रतिमा को जलाशय में विसर्जित करे।

(३) **चैत्र शुक्ला पञ्चमी (श्री-पञ्चमी)**—इस दिन गन्धादि उपचारों तथा खीर आदि नैवेद्यों द्वारा श्रीलक्ष्मी का पूजन करे।

(४) **चैत्र शुक्लाष्टमी**—भवानी का जन्म-दिन है। इस दिन सौ परिक्रमा कर उनकी यात्रा का महान् उत्सव मनाना चाहिए। इस दिन जगदम्बा का दर्शन मनुष्यों को सर्वथा आनन्द देनेवाला है। रात में भगवती का विशेष पूजा-विधान होने से यह तिथि **'महाऽष्टमी'** कही गई है।

* * *

दुर्गा-भक्त कविराज सन्त

साहित्य-सङ्गीत-कला के संरक्षक रीवाँ-नरेश महाराज रघुराज सिंह के शासन-काल के कवियों में **कवि-राज सन्त** का नाम उल्लेखनीय है। वित्त-हीन होते हुए भी, वे स्वाभिमानी एवं कर्मठ थे। किसी के सामने दीनता प्रकट करना, वे मृत्यु के समान दुःखदायी मानते थे। इसलिए नृपति की प्रशंसा में काव्य की सृष्टि इनकी लेखनी न कर सकी।

भगवती दुर्गा के परमोपासक होने के कारण, **कवि-राज सन्त** प्रति-दिन **दुर्गा-सप्तशती** की एक प्रति स्वयं लिखकर सु-पात्र ब्राह्मण को देकर ही भोजन किया करते थे।

कालान्तर में **कवि-राज सन्त** की आर्थिक दशा दयनीय होने लगी। गृहिणी के बारम्बार कहने पर भी वे महाराज के पास न गए और न किसी धन-पति के सामने ही झुके। केवल एक बार वे माता दुर्गा के मन्दिर में जाकर बैठे और देवी की प्रतिमा के सामने आर्त स्वर में बोले—

अधम अजान अभिमानी धन अन्धन के, द्वार - द्वार काहे पेट धन्धन कराए तैं !
पञ्च-तत्व-तनु दे कुटुम्ब-जाल बाँधि मो पै, भोजन के हेतु भाँति - भाँति तरसाए तैं !
यों ही जो करी हुतो, तौ तोहि जगदम्ब मैया, काहे जग-मैया जग-मैया कहवाए तैं ?
आरत पुकारत यों ठाढ़ौ सन्त द्वार हाय, काके बल माय ! मो कपूत उपजाए तैं ?

ऐसी किंवदन्ती है कि भक्त की पुकार से जगन्माता का हृदय द्रवित हुआ और सन्त कवि की आर्थिक दशा सुधरने लगी।

मन्त्र-योग का रहस्य

श्रीयुत सीताराम सक्सेना, ८४ सी० बाघम्बरी गद्दी, प्रयाग (उ०प्र०)

प्रकृति के विचित्र परिणामों द्वारा अनेक प्रकार की सङ्कीर्णता मनुष्य के व्यवहारों में आ जाती है, जिससे यथार्थ का अनुभव न होकर वह अज्ञान के फेर में पड़ जाता है। इसीलिए योग के आचार्यों ने योगाभ्यास द्वारा तन-मन को शुद्ध करने की रीति बताई है। १ मन्त्र, २ हठ, ३ लय और ४ राज— के भेद से 'योग' चार प्रकार का माना जाता है। इन चारों प्रकारों से हृदय की शुद्धि, परमात्मा का साक्षात्कार तथा अणिमा आदि अनेक सिद्धियों की प्राप्ति योगी को होती है।

सिद्धियों की अपेक्षा **चित्त की समता और विषयों में वैराग्य होना** ही योग का मुख्य लक्ष्य है। सिद्धियाँ तो परमार्थ की बाधक हैं। योग्य योगी ही सिद्धियों का ठीक उपयोग कर सकता है। अतः इस विषय में योगी को अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। इन योगों में **'मन्त्र - योग'** सबसे सुलभ तथा स्वाभाविक है।

मनन करने से त्राण अथवा साधक की रक्षा जो करता है, उसे **मन्त्र** कहते हैं। **मन्त्र** सात्त्विक शुद्ध भावों का बोधक होता है। इसके अभ्यास से मलिन तत्त्व-विशिष्ट जीव की उपाधि में शुद्ध सात्त्विक भाव की अभिव्यक्ति होकर मलिनता से होनेवाले दोषों का नाश होता है तथा जीव - भाव निवृत्त होकर ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त होता है। इसलिए **मन्त्र** का आश्रय साधक को सर्व-प्रथम लेना चाहिए।

अनेक विलक्षण शक्तिवाले मन्त्रों के जप का विधान प्रत्येक साधक - सम्प्रदाय में प्रचलित है। वैष्णव, शैव, शाक्त मतों में **नाम** तथा **बीज-मन्त्रों का जप** अत्यन्त महत्त्व रखता है। **'जप'** से ही **'मन्त्र'** सिद्ध होता है तथा **'अर्थ'** का साक्षात्कार होता है, तथापि जप के नियमों का और उसकी भिन्न - भिन्न रीतियों का परिज्ञान न हो, तो **मन्त्र-जप** सफल नहीं हो सकता। प्रत्येक मन्त्र को स्वर, अर्थ, छन्द, विनियोग के ज्ञान-पूर्वक जपने से ही सफलता होती है, अन्यथा विपरीत फल भी हो जाता है। जप तीन प्रकार का होता है —१ वाचिक, २ उपांशु और ३ मानस।

जिस जप में शब्द स्पष्ट उच्चारण - पूर्वक ध्वनि के साथ सुनाई दे, उसे **'वाचिक'** कहते हैं। जिस जप में शब्द तो सुनाई नहीं देता, केवल ओष्ठ-मात्र वागिन्द्रिय की क्रिया से स्पन्दित होते हैं, उसे **'उपांशु'** जप कहते हैं। अर्थ-ज्ञानपूर्वक मन से ही, जिस काल में, साधक मन्त्र - जप करता है, उसे **'मानसिक'** जप कहते हैं। वाचिक से उपांशु तथा उपांशु से मानस जप उत्तम माना जाता है।

परमात्मा का वाचक प्रणव (ॐ) है, उसका जप तथा उसके अर्थ की भावना करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने योग-विघ्नों को दूर करने के लिए तथा परमात्मा के अनुग्रह के लिए मन्त्र - श्रेष्ठ 'ॐकार' का जप-विधान किया है। **'ओमित्येकाक्षर - ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्'**—इस गीता - वचन में

भी यही तत्त्व लिया गया है। जप सब यज्ञों में श्रेष्ठ है। इसी से भगवान् ने '**यज्ञानां जप - यज्ञोऽस्मि**' अर्थात् यज्ञों में जप-यज्ञ मैं हूँ—बताया है।

जप के द्वारा '**मन्त्र**' चैतन्य होकर कुण्डलिनी-शक्ति की जागृति होती है। तदनन्तर '**मन्त्र**' देवता का रूप धारण करता है। स्वप्न में देवता का दर्शन, आवेश और साक्षात्कार- इन तीन अवस्थाओं के सम्पन्न होने पर कुण्डलिनी की पूर्ण जागृति हो जाती है। इसी अवस्था में सिद्धि-कामियो को 'सिद्धि' तथा निष्कामी साधकों को 'मुक्ति' का अधिकार प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न मन्त्रों के सिद्धि - काल में अनेक दिव्य मूर्तियों के स्वरूप का दर्शन साधक को होता है। कुण्डलिनी द्वारा ही इन प्रकाश-मय रूपों की सृष्टि होती है। जप-काल में बड़े-बड़े विचित्र स्वप्न-दर्शन होते हैं, जिनका विचार 'मन्त्र-योग-संहिता', 'मन्त्र-महोदधि' आदि ग्रन्थों में किया गया है।

'**मन्त्र-योग**' का आश्रय सभी योगों में लिया जाता है क्योंकि परमात्मा के साक्षात्कार में '**मन्त्र**' ही प्रधान कारण है।

'मन्त्र' शब्दात्मक होता है और 'शब्द' ही समस्त व्यवहारों का कारण है। अतः आर्य-शास्त्रों में इसके विषय में बहुत विचार किया गया है। परम कारण 'ब्रह्म' के साथ 'शब्द' का अभेद सम्बन्ध है। बाइविल में भी कहा गया है—'सृष्टि के आरम्भ-काल में केवल शब्द था। वह परमात्मा के साथ था और वह स्वयं परमात्मा-स्वरूप था।'

परा-शक्ति जब सृष्टि करने की इच्छा से '**अहं**' रूप से ब्रह्म का प्रकाशात्मक भाव तथा विषय का '**इदं**' रूप से विमर्शात्मक रूप धारण करके विषयी और विषय-रूप को व्यक्त करती है, उसका हेतु '**शब्द**' ही माना जाता है। महर्षि व्यास ने 'वेदान्त - दर्शन' के "**शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्**"—(१-३-२८) इस सूत्र में सृष्टि का कारण '**शब्द**' ही बताया है।

श्रुति, स्मृति प्रमाण से '**शब्द**' ही जगत् का कारण है। यह अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था है। इस आदिम 'शब्द' को '**परा-वाणी**' कहते हैं। यह ब्रह्म की भाषा कही जाती है। मूलाधार से इसकी अभिव्यक्ति होती रहती है। इसे योगी ही जान सकते हैं। मन्त्रों, बीजों का विकास इसी से होता है। जब 'विमर्श' और 'प्रकाश' की स्थूलावस्था होने लगती है, तब उसे ही 'नाद' कहा जाता है। 'नाद' में समस्त वर्ण अर्थ-प्रकाशन रूप-सामर्थ्य से रहते हैं। ज्यों-ज्यों सृष्टि स्थूल रूप धारण करती जाती है, त्यों-त्यों 'शब्द' भी स्पष्ट रूप धारण करता जाता है। क्रम से तीन वाणियाँ—पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं। इस प्रकार समस्त वैदिक, लौकिक व्यवहार का कारण 'शब्द' ही है।

'परा-वाणी' सत्य और नित्य है। शेष वाणियों में माया या अज्ञान के परिणामों का सम्बन्ध होने से क्रमशः तार-तम्य होता गया है। सत्य का प्रकाश न्यून होने से इनमें न्यूनता मानकर तीन अतिरिक्त भेद किए गए हैं। शुद्ध सात्त्विक दैवी भाव का व्यञ्जक शब्द ही **मन्त्र** कहलाता है। दैवी भाव के व्यञ्जक चार सम्प्रदाय मन्त्रों से ही बने हैं, जिन्हें वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक और शाबर कहते हैं। उत्तरोत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व का श्रेष्ठत्व है।

तान्त्रिक कुल वर्णों की संख्या ५१ मानते हैं। शेष १२ व १३ वर्ण वेद में ही उच्चारण - भेद में माने जाते हैं। वास्तव में ५१ मातृकाओं में ही वाङ्मय का समावेश यथार्थ रूप में हो जाता है। तन्त्रों में विशिष्ट भावों को प्रकट करने के लिए बीज-मन्त्रों का भी समावेश है, जिनमें आठ प्रधान बीज हैं। 'मन्त्र-योग संहिता' में इन्हें इस प्रकार कहा गया है—

गुरु-वीजं शक्ति-वीजं, रमा-वीजं ततो भवेत् । काम - वीजं योग - वीजं, तेजो - वीजमथापरम् । शक्ति -वीजं च रक्षा च, प्रोक्ता चैषां प्रधानता ।

अर्थात् **ऐं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, क्रीं, ट्रीं, स्त्रीं, ह्लीं**—ये आठों वीज ॐकार-रूप शब्द - ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं । मन्त्र-शास्त्र में मन्त्रों के तीन प्रकार हैं—१. वीज-मन्त्र, २ मन्त्र और ३ माला-मन्त्र । मन्त्र और माला-मन्त्र का अर्थ तो स्पष्ट होता है, किन्तु वीज-मन्त्र जप से अपने अर्थ प्रकट करते हैं । मन्त्रों से ही कुण्डलिनी का उत्थान होता है और सोई हुई विविध दैवी शक्तियाँ जागृत होती हैं । तभी जीव अविद्या से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द का भोक्ता बनता है ।

गुरु, मन्त्र व देवता में अभेद है । देवता का ही पूर्व-रूप शब्द या मन्त्र है । जैसे देवता हैं, मन्त्र तथा गुरु भी वैसे ही हैं इनके पूजन से तुल्य फल होता है । इससे देवता के साथ अभेद और नित्यता ज्ञात होती है । वेद भी शब्द को नित्य बताता है । सात्त्विक भावों के अतिरिक्त राजस, तामस भावों को भी बतानेवाले कुछ वेद, पुराण और तन्त्रों के मन्त्र हैं, तथापि वे अधिकारी-भेद से कहे गए हैं । उनका प्रतिपादन किसी समय-विशेष के लिए, या लोक-हित की अपेक्षा से किया गया है । आपेक्षिक रूप से ही ये ग्राह्य हैं, वास्तव में नहीं । इन कर्मों के आचरण के बाद प्रायश्चित्त करने का विधान है । अतः इन्हें निषिद्ध कोटि में ही जानना चाहिए । सात्त्विक कर्मों के लिए तो **'प्रत्यवायो न विद्यते'** कहा गया है अर्थात् उनके करने में कोई बाधा नहीं है ।

मन्त्र में १ छन्द, २ ऋषि, ३ देवता, ४ बीज, ५ कीलक और ६ शक्ति—ये छः बातें मुख्य हैं । वैदिक मन्त्रों में केवल छन्द, ऋषि और देवता—इन तीन का ही उपयोग होता है । शाबर मन्त्रों के विषय में 'अनमिल आखर अर्थ न जापू' और 'शाबर-मन्त्र-जाल जिन सिरजा' आदि सभी जानते हैं । पौराणिक मन्त्र भाव - प्रधान होते हैं—'ॐ **नमो भगवते वासुदेवाय'** आदि । इन मन्त्रों में क्रिया गौण होती है । इष्ट-रूप की भावना मन में सतत रूप से बनी रहने से ही सिद्धि होती है । क्रिया की मुख्यता तान्त्रिक मन्त्रों में ही अपेक्षित है । वैदिक मन्त्रों में भावना और क्रिया दोनों मुख्य हैं ।

मन्त्र का उच्चारण **'छन्द'** के अनुसार, मन्त्र-तत्त्व के आविष्कर्ता का परिचय **'ऋषि'** से, समस्त इष्ट-फल के प्रदान करनेवाले **'देवता'** का परिज्ञान 'मन्त्र' एवं 'ध्यान' की रीति से करना होता है । मन्त्र का मूल तत्त्व संक्षिप्त रूप में **'वीज'** में होता है । विरोधी शक्ति, जो तत्त्व का विनाश करती है तथा साधक को साधना से हटाती है, उसके विरोध के लिए **'कीलक'** का उपयोग होता है । मन्त्र में चैतन्य-शक्ति का सञ्चार **'शक्ति'** से होता है । मन्त्र-योगी को इन रहस्यों को ध्यान में रखकर मन्त्र-साधना में प्रवृत्त होना चाहिए ।

विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति के लिए अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका, षोढा आदि न्यास निर्दिष्ट हैं । अन्तर्याग और बहिर्याग द्वारा देवता का पूजन, तर्पण, होम, पुरश्चरण, संस्कार आदि के द्वारा मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध होता है । इन उपायों से मन्त्र चैतन्य होकर देवता का साक्षात्कार होता है ।

पर-ब्रह्म परमात्मा ही देवता के रूप में अपनी ज्ञान-शक्ति द्वारा व्यक्त होता है । अनेक देवताओं के भिन्न-भिन्न स्वरूप आर्य धर्म में माने गए हैं । यह रूप-वैचित्र्य मन्त्रों द्वारा ही ज्ञात होता है । मन्त्रों द्वारा ही उनकी अनेकता व्यक्त हुई है । तथापि उनमें प्रकट चेतना - तत्त्व एक ही है । **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'**—इस मन्त्र में यही बताया है ।

शब्द-तत्त्व या जिसे शब्द - शक्ति कहते हैं, उसका साहचर्य ज्ञान या ज्ञान - शक्ति के साथ है। बिना शब्द-शक्ति के ज्ञान नहीं हो सकता अर्थात् ज्ञान का व्यञ्जक शब्द है। जैसे शब्द का अर्थ से सम्बन्ध है, वैसे ही ज्ञान से भी उसका सम्बन्ध है। आनन्द-शक्ति एवं क्रिया-शक्ति भी ज्ञान-शक्ति द्वारा ही अपना स्वरूप प्रकट करती हैं। जितने भी भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक रहस्य हैं, वे सब ज्ञानात्मक ही हैं। उनका प्रकाशन शब्दात्मक ग्रन्थों, मन्त्रों, आख्यानों, इतिहासों द्वारा ऋषियों, आचार्यों, साधु-सन्त-महात्माओं ने किया है। इसी तत्त्व को उपासक सरस्वती-शक्ति के रूप में ध्यान करता है। सरस्वती के ध्यान में वीणा, पुस्तक द्वारा शब्द-शक्ति, नीर-क्षीर-विवेक करनेवाले हंस-वाहन द्वारा विवेक-शक्ति का साहचर्य ज्ञात होता है। इस स्पष्टीकरण से ध्यान की रहस्य-मयी कल्पना का भाव अच्छी तरह व्यक्त होता है।

मन्त्र का ठीक अभ्यास होने पर शुद्ध सात्त्विक स्वरूपवाला तत्त्व साधक के सम्मुख प्रकट होता है। उसे ही राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, नारायण आदि नाम दिए गए हैं। इन स्वरूपों का तात्त्विक स्वरूप-परिचय एवं इन स्वरूपों के साक्षात्-कर्त्ता साधक के गुण, स्वभाव का ज्ञान कि अमुक साधक का अधिकार किस भाव के साक्षात्कार के योग्य है, किस भाव के देव के साथ इसका ऐक्य, कौन भाव इस साधक पर अनुग्रहीत हो सकता है—आदि बातों का निर्णय केवल तत्त्वज्ञ गुरु ही जान सकते हैं। इसलिए साधना-मार्ग में जो स्थान पर-ब्रह्म का है, वही गुरु का है। जिस साधक को देव तथा गुरु में समान बुद्धि से भक्ति होती है, उसी को उपनिषद् के अर्थ प्रकाशित होते हैं। जो लोग अपने मन से ही साधना करते हैं, उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता। अतः दीक्षा-तत्त्व के अनुसार साधक को उपदेश प्राप्त करके ही साधना आरम्भ करनी चाहिए। यद्यपि शास्त्रों में ये बातें पर्याप्त रूप में बताई गई हैं, तथापि अभ्यास-काल की बातों का निर्णय तो गुरु ही कर सकते हैं। इसलिए परम श्रद्धा एवं विश्वास से गुरु की सेवा करना साधक का मुख्य कर्तव्य है। यदि इसमें किञ्चित् भी त्रुटि होगी, तो साधना निष्फल हो जायगी।

(ब्रह्मलीन राष्ट्र-गुरु पूज्य-पाद श्रद्धेय श्री पीताम्बरा-पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज दतिया की कृति 'सिद्धान्त-रहस्य' के आधार पर लिखित)।

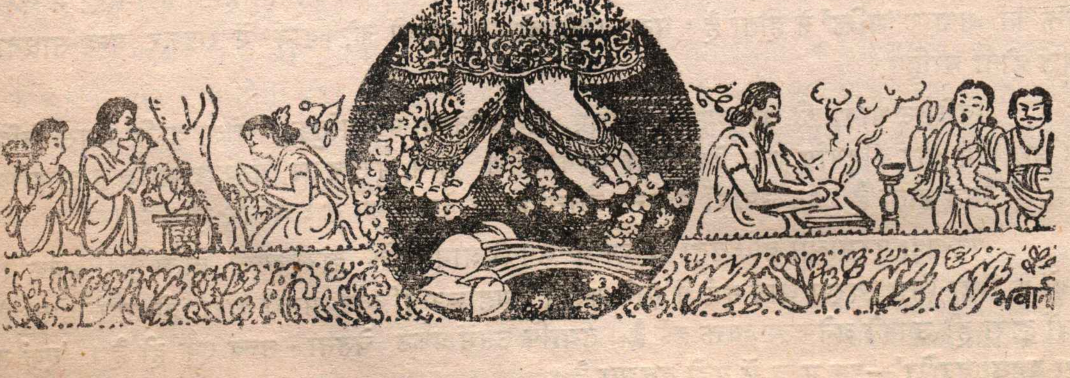

पंचाग्नि-तपस्या

—कौलाचार्य पं० नथमल दाधीच

(गताङ्क का शेषांश)

'योग-रत्नावलि' में कहा है कि मन्त्र, तन्त्र, रस-पादुका (अर्थात् भूमि से पैरों को उठाकर चलने की शक्ति), अञ्जन, स्वर्जन और भुवनादि सिद्धियाँ उस महा - मति शक्ति - शाली युवक को मिलते हैं, जिसने दिव्य तपस्या से इष्ट-देव को सन्तुष्ट किया हो ।

'महा-भारत', अनुशासन पर्व में ब्राह्मणों के प्रसङ्ग में कहा है कि तपस्या (स्वाध्याय) में प्रवृत्त होकर तुम्हें सब कुछ कामनाएँ प्राप्त होंगी । जो कुछ इस मनुष्य-लोक में प्राप्त होनेवाली वस्तुएँ हैं तथा जो दैव-द्वारा मिल सकती हैं, वे सब तपस्या से, दान से और विनय से मिल सकती हैं । तपस्या से रूप, सौभाग्य और नाना प्रकार के रत्न मिलते हैं, कर्म (पुरुषार्थ) से ही सब कुछ मिलता है ।

एक मास या आधे मास के 'उपवास' को 'तप' कहते हैं । त्याग की सम्प्राप्ति ही उत्तम 'तप' है । मनुष्य सदा उपवासी और ब्रह्मचारी रहे । प्रिय बोलनेवाला हो । देवताओं का पूजन करे, कुटुम्ब को पालनेवाला, धर्म की कामनावाला, अमृताशी रहे । यज्ञ से अवशिष्ट अन्न का ही भक्षण करे । पवित्र शुद्धाचरणवाला हो । सत्यवादी और नियत आहार-विहारवाला रहे ।

दान देनेवाला व्यक्ति पवित्र होता है । अन्न देनेवाला, दिन को भोजन न करनेवाला, अपने नौकर इत्यादि के बाद भोजन करनेवाला व्यक्ति 'अमृताशी' (अमृत खानेवाला) कहा गया है ।

'दान' कई तरह के हैं—सम, सत्य, अहिंसा, अपनी ही स्त्री में गमन ।

भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा—उपवास से बड़ा कोई तप नहीं है क्योंकि नाना प्रकार के यज्ञ किए, बहुत वर्षों तक आलस्य-रहित उग्र तप किए, परन्तु उसके पुण्य से यहाँ मैं नहीं आया अपितु अनशन इत्यादि की तपस्या द्वारा ही मुझे मुक्ति-प्रद मार्ग मिला । धर्म से बड़ा देव नहीं, अनशन से बड़ा तप नहीं है । ऋषि लोग उपवास से ही परा-सिद्धि को प्राप्त हो गए ।

मैत्रेय के प्रति व्यास कहते हैं—मैं 'दान' की प्रशंसा करता हूँ । आपके लिए 'तप' ही बड़ी बात है । वेदों में भी पवित्र वस्तु 'तप' है । 'तप' स्वर्ग का साधन है । तपस्या से ही महत्-तत्त्व की प्राप्ति होती है । जो कुछ भी पाप है, वह सब तपस्या से दूर हो जाता है । तपस्वी पुरुष के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । दूरस्थ और असम्भव कार्य 'तपस्या' से ही सिद्ध होते हैं । अतः 'तप' से बड़ा कोई पदार्थ नहीं है ।

पृथ्वी, धन, धान्य, आरोग्य और इन वस्तुओं की वृद्धि 'तपस्या' द्वारा प्राप्त होती है । 'दान' से उपभोग तथा प्रभुता (बड़ाई) मिलती है । 'ब्रह्मचर्य' से जीवन मिलता है । 'अहिंसा' सुख का मार्ग है और 'सत्य' से ब्रह्म-प्राप्ति होती है । पत्ते खानेवालों को स्वर्ग मिलता है । फल-फूल खानेवालों को उच्च-लोक प्राप्त होते हैं और स्नान - दान से आयु एवं धन की वृद्धि होती है । गुरु-सेवा से विद्या, श्राद्ध से सन्तति, दीक्षा से समृद्धि मिलती है । निराहार कन्द-मूल-फल - भक्षी को तपोलोक । अतः ब्रह्म - वादी मनुष्यों के लिए 'तप' ही बड़ा साधन है । जितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए यह स्वर्ण-पथ-प्रदर्शक है । प्रजापति ने 'तप' के प्रभाव से ही प्रजा की रचना की । आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्-गण, सिद्ध, साध्य,

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, अन्य देवता-गण—सभी ने 'तप' के प्रभाव से ही सर्व - सौख्य प्राप्त किया। ब्रह्मा द्वारा निर्मित जो भी उच्च व्यक्ति हैं, वे सब 'तप' के प्रभाव से घूमते हैं।

'तप' से सब वस्तुएँ मिलती हैं, ऐसा विद्वानों द्वारा कहा गया है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो 'तप' से न मिले। 'तप' से विधाता ने सृष्टि की और ऋषि लोगों ने वेद की ऋचाओं की रचना की। सब तरह की वनस्पतियाँ, तीनों विद्याएँ (अपरा, मध्यमा और कनिष्ठा) 'तप' से ही परिमार्जित होती हैं। अतः 'तप' ही सर्व-प्रधान है।

उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा **तपस्या की महानता** के विषय में तो स्पष्ट हो चुका है, परन्तु अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा शाक्त - सम्प्रदाय की तपश्चर्या में—**'कार्यं साधयामि वा देहं पातयामि'** का लक्ष्य होने के कारण साधक को बड़ी कठिन परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है।

अनशन, व्रत-परायण शाक्त-साधक को मण्डल-त्रिकोण-स्थित आसन पर सिद्धासन से स्थित होकर; अपने चतुर्दिक् पञ्च, सप्त, नव तथा चौरासी अग्नियाँ (धूनियाँ) प्रज्वलित कर, प्राणायाम, भूत-शुद्धि, न्यास, ध्यानादि द्वारा स्व-शरीर को शक्ति-स्वरूप बना, भगवती की अर्चनोपरान्त, घृत-साकल्यादि द्वारा हवन - क्रिया पूर्ण करने के उपरान्त, मध्याह्न के प्रखर सूर्य - किरणों के नीचे कोपीनादि के सिवा समस्त वस्त्रों का परित्याग कर, शिशु की तरह स्नेह-मयी माँ की गोद में पूर्ण - रूप से आत्म - समर्पण करना पड़ता है। मानसिक जप-ध्यानादि द्वारा महा-महिमा-मयी श्री भुवनेश्वरी महा - शक्ति में अपने चित्त को लय करके, **'अहं देवी न चान्योऽस्मि'** का अनुभव करता है।

उपर्युक्त कथन कोई कल्पना-मात्र नहीं हैं। शास्त्रीय निर्दिष्ट नियमानुसार साधनानन्तर जैसा मैंने अनुभव किया है, वैसा ही आप लोगों के समक्ष निवेदन किया है। मेरे इन शब्दों के द्वारा किञ्चित्-मात्र भी अगर किसी जिज्ञासु को शाक्त-सिद्धान्त के प्रति दृढ़ आस्था प्रगट हुई, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा। कहा भी है—**'श्रद्धया सत्यमाप्यते, न गणयेत् कमपि'** अर्थात् श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। अपने सिद्धान्त से विरोध करनेवाले ब्रह्मा भी नगण्य हैं। भावार्थ—अपने धर्म पर दृढ़ता से विश्वास करना आवश्यक है।

कोई इसको साम्प्रदायिक आग्रह कहकर आक्षेप कर सकता है, किन्तु उस अनधिकारी के कथन का मूल्य ही क्या है? केन्द्र का विन्दु एक होने के उपरान्त भी परिधि के विन्दु भिन्न - भिन्न होते हैं। परिधि-विन्दु से गमन करने पर ही केन्द्र (महा-शक्ति) को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रपञ्चावस्था में स्वभाव की विभिन्नता होने के कारण भिन्न-भिन्न मार्गों की आवश्यकता है। 'आर्य धर्म' इतने सङ्घर्षों का सामना करने के उपरान्त भी विश्व में जो अपनी सुदृढ़ स्थिति बनाए हुए दृष्टिगोचर हो रहा है, वह 'साम्प्रदायिकता' की ही देन है। 'साम्प्रदायिकता' वह रस है, जो शुष्क से भी शुष्क मानव समाज को सिञ्चित कर, नव-ज्योति व असीम उत्साह से पूर्ण करके जीवन को प्रगति - पथ पर सञ्चालित करती है। 'साम्प्रदायिकता' का प्रकृति-मण्डल में अपना एक स्वतन्त्र स्थान होने के कारण विरोध करने के उपरान्त भी सर्वत्र उसी का साम्राज्य मिलता है। धीर, वीर, गम्भीर बहादुर शाक्त बन्धुओं! समय की पुकार आप लोगों का आह्वान करती है कि 'तपस्या' द्वारा महा - शक्ति प्राप्त कर, 'शाक्त-धर्म' के अभ्युत्थान के लिए मैदान में आ डटें। विजय-श्री हमारा वरण करने के लिए लालायित रूप से प्रतीक्षा कर रही है।*

* लगभग ३४ वर्ष पूर्व सं० २०१६ की 'चण्डी' में प्रकाशित लेख का सारांश। पाठक-बन्धु कृपया ध्यान दें कि 'शाक्त-धर्माचार्य' कब से राष्ट्र-कल्याण के लिए आह्वान कर रहे हैं!—सम्पादक

तारा : एक साधना

—पं० श्री बलराम दुबे, ७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

सदमा जो आकर ठहर जाए द्वार पर,
छाती पर रखकर चट्टान।
भोगा है आजीवन—
वन्ध्या ने शून्य प्रसव,
पीड़ा के त्रासद तूफान।
जो निकलेगा अवश्य, विस्फोट की तरह—
फाड़ता हुआ क्षुब्ध महा-शून्य का वक्ष,
पर मुझे तो सुनना है—
पक्षियों की चहक—
तूफान के पहले टिकोरों की बन्दगी को,
मसानी नीरवता में मन्त्रों की खनक और—
तूफान के बाद व्याप्त प्रलय की दुन्दुभी को।।
आवाज की सीमा-रेखा के पार,
जहाँ खो देती है ध्वनि तरङ्गों की सार्थकता।
मुझे तो सुनना है समाधिष्ट वादी में,
हृदय से लगकर धड़कने की भनक—
ध्वंस के बाद स्वयं बज उठी बाँसुरी को।।
तोड़ना जो है उसे, तोड़ दे परतों को—
कम्पन के सख्त-तम हथौड़ों से !
उतारना है मुझको तो,
शीतल जल-ऊर्मियों पर सूर्य की ऊर्जा को।।
पचाना है उसको गर काल-कूट जहर, तो—
करेगा बेअसर—
पाँवों से छूकर विष-बुझी यमुना को।।
तोड़ पञ्च-भूतों की सहज-धर्मिता को—
भरना है मुझको तो, चेतना की लहर,
कि सो न जाएँ बच्चे—
पूतना के स्तनों से चूसकर जहर।।
पर, जानता हूँ अपनी असमर्थता को।
दूर—बहुत दूर, बिछुड़ा रह गया हूँ,
आवाज की उस सीमा-रेखा के पार,
जहाँ से सुनाई नहीं देती है—
आदमी की व्यथा।।
न इतनी प्रबलता है रुन्धित पुकार में—
कि वन जाए द्रवित हो—
हृदय भी प्रस्तर का दुग्ध-मय सरोवर-सा।।
पर, हे क्षीर-सागरा !
कभी अङ्क में बिठाना या नहीं,
तोड़ न देना फिर, शिशु-वत् दुलार की—
पावन पयोधरों की दुध-मुँही लालसा।।
त्याग कर वाहनों को, वस्त्राभरण गहनों को—
आओ जब, नग्न-पाँव नीरव मसान में—
अलख जगाने, तो—
डाल देना निर्वसना !
मुँह में नव-जात के—
पावन-पयोधरों का उन्नत नव-नील चषक।।
बन गया है, भय का जो कारण-भूत—
जी उठे वह मसान।
छलकाओ रस-कलश—
दुग्ध-धवल मधुर सरस।।
भृगु ऋषि की पावन तपो-भूमि में परमहंसी—
आश्रम के पश्चिम, नर्मदा के लम्हेरा घाट पर,
करता हूँ वशिष्ठ-पुत्र बलराम, तेरा—
आवाहन तारम्बिके !
जहाँ पश्चिमी किनारों की शान्त पृष्ठ-भूमि में—
उगते और डूबते हुए सूरज की साधना में—
बहती है नदी उत्तरायणा।
पर्वत की नील-श्याम छाया में,
जाग उठी तारा की—
दुग्ध-धवल धारा में निर्निमेष कामना।।
तुझे देखता हूँ, पक्षियों के पङ्खों पर,
आती और जाती हुई आर-पार,
उतरती हुई—
जैसे उतरती है एकाकी नाव पर,
मछुवारे की साधना में मछली की झलक।।
व्याप्त सन्नाटे में स्वयं को खोकर,

तलाशती हुई साधना में उभरती है, जैसे—
परमहंसी नेत्रों में रहस्य-मयी चमक।
जगी हो जैसे श्री वशिष्ठ की आँखों में—
नर्मदा-किनारे तुझे पाने की ललक ।।
ओ एक-जटे तारे !
उतरते हुए साधना की नदी में,
तुझे देख लिया होगा अरुन्धती-वशिष्ठ ने ।।
धुले आसमान की झिल-मिल-सी छाँव में,
उगा लिया होगा नदी चोलना ने—
पद्म-श्वेत धार में ।।
सुमेरु पर्वत की स्पन्दित पृष्ठ-भूमि में,
ऊर्मियों पर, रश्मियों का उदित रोमाञ्च !
उदय की बेला में खोल दिए होंगे पटल,
तेरी आगवानी में श्वेत-कमल शत-दल ने ।।
उभरी होगी तेरी छवि, रेखा-कृत निर्वसना !
खोल लिए होंगे, पटल कोमल कमलिनी ने ।।
सद्यः-स्नाता ! आकाश में, जैसे—
उभरती है भोर की आरती ।
बादलों की नील पृष्ठ-भूमि में—
उभरा होगा तुम्हारा मस्तक ।
प्रशान्त वह ललाट,
जहाँ करते हैं बास अक्षोभ्य शिव-शङ्कर ।।
सूर्य की किरणों ने सँवार दिए होंगे तेरे केश,
बाँध दिए होंगे—

प्रचण्ड झंझावात ने—
मुक्त सिर-जटाओं को, क्रुद्ध नाग-पाश में ।।
"ओ ज्वलित मसान की ज्वलन्त उग्र-कल्पना,
मुण्ड-माल अस्थि-माल नाग-हार-धारिणी !
अङ्ग-अङ्ग नाग-पाश-सज्जिता अलंकृता,
ओ प्रलय-भयङ्करी विनाश-ध्वंस-कारिणी !
लहराओ अम्ब ! आप खड्ग वाम-हस्त से—
कि नष्ट हों विकार, क्लेश, कष्ट विघ्न-हारिणी !
जटिल नाग-पाश मोह काट, कर्तरी लिए—
भुक्ति-मुक्ति-दायिनी, अपार-सिन्धु-तारिणी !
आसुरी विषाक्त रक्त-वीज भाव-वृद्धि पी,
निम्न वाम-हस्त काल-खप्पर सु-धारिणी !
लिए नव्य-नील-कमल ऊर्ध्व वाम-हस्त में,
ऋद्धि-सिद्धि-दायिनी वशिष्ठ-इष्ट-दायिनी !
लेती हो जन्म, जब साधकों के हृदय में—
बीज-मय सङ्कल्प-सी,
तब कहती हो, व्याप्त सन्नाटे से निकालकर,
'वशिष्ठ ! मुझे ले चलो—
ज्वलित चिताओं की लपटों पर ।
ईर्ष्या, मत्सरता को खाकर पचा तो लो,
गङ्गा की धार में तलाशो, मुझे घाट से,
काम, क्रोध, लोभ, मोह अग्नि में पकाओ तो !
जपो बीज-मन्त्र को कपाल-माल-मालिका
अस्मिता की स्वाद-चाट खाओ, डकारो तो !

'हरी थी मैंने ही दग्ध कण्ठ की व्यथा,
स्तनों के दूध को पिलाकर नील-कण्ठ को ।
हरूँगी तेरी भी व्यथा ताप तीनों को,
तेज सिद्ध आँच में मसान सिद्ध कर तो लो !

'जब सो जाते हैं लोग, मसानी नीरवता में—
आती हूँ, सोए हुए शवों पर,
पैंतरे में—
पाँव को बढ़ाती हुई,
मृत्यु को जीवन-सञ्जीवनी पिलाती हुई !
'शब्द जो लिखे हैं तुमने, कभी मिटेंगे नहीं—
न मरेंगे बीज, जो बोए हैं तुमने ।
जब कभी खिलोगे, व्योम की छाया में—
नील-पद्म-पंखुड़ी—से,
प्राप्त होगी तारा की शाश्वत तुझे नील-सत्ता !
लीन हो जाओगे, वशिष्ठ ! सदा-सर्वदा के लिए,
सीता-राम की सत्ता में समाहित मेरे नाम की तरह !'

ॐ श्रीअरुन्धती-वशिष्ठेभ्यो नमः ।।

* * *

साधनमाला

[गताङ्क (फरवरी, ९३) से आगे]

(८९)

'दुर्गा' नाम-जप प्रयोग

करुणा-वरुणालया, सर्वैश्वर्य-निलया, अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-सृष्टि-पालन-लय-कारिणी, ब्रह्मा-विष्णु-शिव-सम्पूजित-चरण-सरोरुहा, सच्चिदानन्द-घनात्मिका, अचिन्त्य-शक्ति-रूपिणी, जगन्माता श्रीदुर्गा जी को कौन नहीं जानता ? सूर्योदय हो जाने पर जैसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी भाँति प्रातः-काल उठकर जो **'दुर्गे दुर्गे'** का जप करता है, उसकी आपदाएँ विनष्ट हो जाती हैं—

यः पठेत् प्रातरुत्थाय, दुर्गा - दुर्गाऽक्षर - द्वयम् ।
आपदस्तस्य नश्यन्ति, तमः सूर्योदये यथा ।।

* * *

(९०)

'सप्तशती'–प्रयोग

।। श्रीशिव उवाच ।।

रक्तेन चन्दनेनेह, बिल्वस्य कण्टकेन च ।
बिल्व-पत्रेषु दुर्गायाश्चरितं मध्यमं शिवे ! ।।
चन्द्रे शुक्रेऽथवा वारे, नवरात्र-चतुष्टये ।
अष्टोत्तर-शतं योऽत्र, संलिखेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।।
पूजयित्वा विधानेन, देव्या हस्ते निवेदयेत् ।
सर्वं-बाधा-विनिर्मुक्तो, धन-धान्य-सुतान्वितः ।

सद्यो भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिश्च गच्छति ॥
नारायणेन साकं सा, देवी विश्वम्भरी रमा ।
रमते भवने तस्य, धन - धान्य - प्रवर्षिणी ॥

चारों नव-रात्रों में सोम-वार या शुक्र-वार के दिन साधक बिल्व-पत्रों पर **‘श्रीदुर्गा-सप्तशती’ के मध्यम चरित्र को रक्त-चन्दन से बिल्व-वृक्ष के काँटे से १०८ बार श्रद्धा-पूर्वक लिखे**। फिर भगवती का पञ्चोपचारों (१ गन्ध, २ पुष्प, ३ धूप, ४ दीप, ५ नैवेद्य) द्वारा पूजन कर उस पूजन का ‘फल’ भगवती को समर्पित करे। इस प्रकार अनुष्ठान करनेवाला सभी बाधाओं से मुक्त होकर धन-धान्य-पुत्रादि से सम्पन्न होता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। नारायण के साथ रहकर विश्व की सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली भगवती लक्ष्मी धन-धान्य की वर्षा करती हुई साधक के भवन में निवास करती हैं।

* * *

(९१)

श्री दुर्गोपनिषत् (अथर्वशीर्ष)

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः—‘काऽसि त्वं महा-देवि ?’

साऽब्रवीत्—‘अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्मा - ब्रह्मणी (द्वे ब्रह्मणी) वेदितव्ये ॥१

‘अहं पञ्च-भूतान्यहं पञ्च-तन्मात्राणि। अहमखिलं जगत्। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहमविद्याऽहम्। अजाऽहमनजाऽहम्। अधश्चोर्ध्वं तिर्यक् चाहम्। अहं रुद्रैर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वे-देवैः। अहं मित्रा-वरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ। अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरु-क्रमं ब्रह्माणमुत प्राजापत्यं दधामि। अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सु-प्राजाय यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री - सङ्गमनी वसूनां चिकीतुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद, स दैवीं सम्पदमाप्नोति।’

ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥२

तामग्नि-वर्णां तपसा ज्वलन्तीं, वैरोचनीं कर्म-फलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये। असुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥३

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्व - रूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप-सुष्टुतैतु । काल-रात्रि ब्रह्म-स्तुतां वैष्णवीं स्कन्द-मातरम् । सरस्वतीमदितिं दक्ष-दुहितरं नमामः पावनां शिवाम् । महा-लक्ष्म्यै च विद्महे सर्व - शक्त्यै च धीमहि, तन्नो देवी प्रचोदयात् । अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष ! या दुहिता तव, तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृत-बन्धवः । कामो योनिः कमला वज्र-पाणिर्गुहा हस्ता मातलिश्वायमिन्द्रः । पुनर्गुहा सकला मायया चापृथक् त्वेषा विश्व-माताऽति-विद्या ॥ एषाऽऽत्म-शक्तिः, एषा विश्व-मोहिनी । पाशांकुश-धनुर्वाण-धरा । एषा श्रीमहा-विद्या । य एवं वेद, स शोकं तरति । नमस्ते भगवति ! मातरस्मान् पाहि सर्वतः । सैषाऽष्टौ वसवः, सैषैकादश-रुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषा विश्वे-देवाः, सोमपा असोमपाश्च । सैषा यातुधाना, असुरा, रक्षांसि, पिशाचा, यक्षाः, सिद्धाः । सैषा सत्त्व-रजस्तमांसि । सैषा ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-रूपिणी । सैषा प्रजापतीन्द्र-मनवः । सैषा ग्रह-नक्षत्र-ज्योतींषि । कला-काष्ठादि-काम-रूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यं । पापाप-हारिणीं देवीं भुक्ति-मुक्ति-फल-प्रदाम् । अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शारदां शिवाम् ॥४

वियदीकार-संयुक्तं, वीति - होत्र - समन्वितम् ।
अर्धेन्दु - लसितं देव्या, वीजं सर्वार्थं - साधकम् ॥५
एवमेकाक्षरं मन्त्रं, यतयः शुद्ध - चेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दं, मम ज्ञानाम्बु - राशयः ॥६
वाङ्-माया-ब्रह्मभूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्र-समन्वितम् ।
सूर्योऽवाम - श्रोत्र - विन्दु-संयुक्तष्टात् तृतीयकः ॥७
नारायणेन सम्मिश्रो, वायुश्चाधार - युक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यात्, ,परमानन्द-दायकः ॥८
हृत्-पुण्डरीक-मध्यस्थां, प्रातः-सूर्य-सम-प्रभाम् ।
पाशांकुश - धरां सौम्यां, वरदाभय - हस्तकाम् ॥९
त्रिनेत्रां रक्त - वसनां, भक्त - काम - दुघां भजे ।
नमामि त्वां महा-देवीं, महा-भय-विनाशिनीम् ॥१०

महा-दारिद्र्य-शमनीं, महा-कारुण्य-रूपिणीम् । यस्याः स्वरूपं ब्रह्माद्या न जानन्ति, तस्मादुच्यते अज्ञेया । यस्या अन्तो न लभ्यते, तस्मादुच्यते अनन्ता । यस्या गृहं नोपलक्ष्यते,

तस्मादुच्यते अलक्ष्या । यस्या जननं नोपलभ्यते, तस्मादुच्यते अजा । एकैव सर्वत्र वर्त्तते, तस्मादुच्यते एका । एकैव विश्व-रूपिणी, तस्मादनेका । अनन्त-तपो-वाच्यज्ञेयाऽनन्ताऽलक्ष्या-ऽजैकाऽनेका । मन्त्राणां मातृका देवी, शब्दानां ज्ञान - रूपिणी । ज्ञानानां चिन्मयाऽतीता, शून्यानां शून्य-साक्षिणी । यस्याः पर-तरं नास्ति, सैषा दुर्गा प्रकीर्त्तिता । तां दुर्गां दुर्गमां देवीं, दुराचार-विघातिनीम् । नमामि भव-भीतोऽहं संसारार्णव-तारिणीम् ।।११

य इदमथर्व-शिरसमोऽधीते, स पञ्चाथर्व-शीर्ष-फलमवाप्नोति । इदमथर्व-शीर्षमज्ञात्वा, योऽर्चां स्थापयति, शत - लक्षं प्रजप्त्वाऽथ नार्चा–सिद्धिं च विन्दति । शतमष्टोत्तरं चास्य, पुरश्चर्या-विधिः स्मृतः ।।१२

दश - वारं पठेद् यस्तु, सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।
महा-दुर्गाणि तरति, महा - देव्याः प्रसादतः ।।१३

सायमधीयानो दिवस-कृतं पापं नाशयति, प्रातरधीयानो रात्रि-कृतं पापं नाशयति । सायं-प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति । निशीथे तुरीय-सन्ध्यायां जप्त्वा, वाक्-सिद्धिर्भवति । नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा, देवता-सान्निध्यं भवति । प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिष्ठापयति । भौमाश्विन्यां महा - देवी - सन्निधौ जप्त्वा, महा - मृत्युं तरति । महा - मृत्युं तारयति, य एवं वेद ।।१४

---

(९२)

श्रीदुर्गा आसुरी-कल्प

प्रेषक : पं० कृष्णानन्द मिश्र वैद्य, प्रयाग

विनियोग—ॐ आसुरी-मन्त्रस्य, अङ्गिरा ऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीदुर्गा आसुरी देवता, ॐ वीजं, स्वाहा शक्तिः, वशीकरणे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—ॐ अङ्गिरा-ऋषये नमः शिरसि, ॐ विराट्-छन्दसे नमः मुखे, ॐ श्रीदुर्गा-आसुरी-देवतायै नमो हृदि, ॐ-वीजाय नमो गुह्ये, स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः, वशीकरणे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास—ॐ कटुके कटुक-पत्रे अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सुभगे आसुरि तर्जनीभ्यां नमः । ॐ रक्ते, रक्त-वाससे मध्यमाभ्यां नमः । ॐ अथर्वणस्य दुहिते अनामिकाभ्यां नमः । ॐ अघोरे अघोर-कर्म-कारिके कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ अमुकस्य गतिं दह-दह, उपविष्टस्य

गुदं दह दह, सुप्तस्य मनो दह दह, प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह, हन हन, पच पच, तावत् दह, तावत् पच, यावन्मे वशमायान्ति करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्ग-न्यास—ॐ कटुके कटुक-पत्रे हृदयाय नमः । ॐ सुभगे आसुरि शिरसे स्वाहा । ॐ रक्ते रक्त - वाससे शिखायै वषट् । ॐ अथर्वणस्य दुहिते कवचाय हुम् । ॐ अघोरे अघोर-कर्म-कारिके नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ अमुकस्य गतिं दह दह, उपविष्टस्य गुदं दह दह, सुप्तस्य मनो दह दह, प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह, हन हन, पच पच, तावत् दह, तावत् पच, यावन्मे वशमायान्ति अस्त्राय फट् सर्वाङ्गे ।

ध्यान—शरत्-चन्द्र-कान्तिं वराभीति-शूलं, शृणिं हस्त-पद्मैर्दधानाम्बुजस्थाम् ।
विभूषाम्बराढ्यां हि यज्ञोपवीतिं, मुदाऽथर्व-पुत्रि ! करोत्वासुरी नः ।।

मन्त्र—ॐ कटुके कटुक-पत्रे सुभगे आसुरी रक्त - वाससे, अथर्वणस्य दुहिते अघोरे अघोर-कर्म-कारिके सर्व-दुष्टस्य गतिं दह दह, उपविष्टस्य गुदं दह दह, सुप्तस्य मनो दह दह, प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह, हन हन, पच पच, तावत् दह, तावत् पच, यावन्मे वशमायान्ति हुं फट् स्वाहा ।

विधि—नित्य ११२ जप । पुरश्चरण २००० । घृत और राई (आसुरी या राजिक) का दशांश होम । उसका दशांश शर्करोदक द्वारा तर्पण । उसका दशांश मार्जन । उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन ।

* * *

(६३)

परशुराम-कृत श्रीदुर्गा-स्तोत्र

।। श्रीपरशुराम उवाच ।।

श्रीकृष्णस्य च गो-लोक-परिपूर्णतमस्य च । आविर्भूता विग्रहतः, परा सृष्ट्युन्मुखस्य च ।।
सूर्य-कोटि-प्रभा-युक्ता, रत्नालङ्कार-भूषिता । वह्नि-शुद्धांशुकाधाना, सस्मिता सु-मनोहरा ।।
नव-यौवन-सम्पन्ना, सिन्दूर-बिन्दु-शोभिता । ललिता कबरी-भार-मालती-माल्य-मण्डिता ।।
अहोऽनिर्वचनीया त्वं, चार्वीं मूर्तिं च बिभ्रती । मोक्ष-प्रदा मुमुक्षूणां, जगत्-कर्त्री विधिः स्वयं ।।
मुमोह क्षण-मात्रेण, दृष्ट्वा त्वां सर्व-मोहिनीं । रासे सम्भूय सहसा सस्मिताऽऽराधिता पुरा ।।
सद्भि ख्याता तेन राधा, मूल-प्रकृतिरीश्वरी । कृष्णस्त्वां सहसाज्ञाय, वीर्याधानं चकार ह ।।
ततोऽण्डमम्भसो जज्ञे, यतो भूतो महा-विराट् । यस्यैव लोम-कूपेषु, ब्रह्माण्डाद्यखिलानि च ।।

तच्छृङ्गार-श्रमेणैव, त्वन्निःश्वासो बभूव ह । ततस्त्वं पञ्चधा भूय, पञ्च-मूर्तीश्च बिभ्रती ।।
प्राणाधिष्ठात्री या मूर्तिः, कृष्णस्य परमात्मनः । कृष्ण-प्राणाधिकां राधां, तां वदंति पुराविदः ।।
वेदाधिष्ठात्री या मूर्तिर्वेद-शास्त्र-प्रसूरपि । तां सावित्रीं शुद्ध-रूपां, प्रवदन्ति मनीषिणः ।।
ऐश्वर्याधिष्ठात्री मूर्तिर्या शांतिः शांति-रूपिणी । लक्ष्मीं वदंति संतस्तां, शुद्धसत्त्वस्वरूपिणीं ।।
रागाधिष्ठात्री या देवी, शुक्ल-मूर्तिः सतां प्रसूः । सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्ति बुधा भुवि ।।
बुद्धिर्विद्या सर्व-शक्तिर्या-मुक्तिरधि-देवता । सर्व-मङ्गल-रूपा त्वं, सर्व-मङ्गल-कारिणी ।।
सर्वं-मङ्गल-वीजस्य, शिवस्य मन्दिरेऽधुना । शिवे शिव-स्वरूपा त्वं, लक्ष्मी-नारायणान्तिके ।।
सरस्वती च सावित्री, वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया । राधा रासेश्वरस्यैव, परिपूर्णं - तमस्य च ।।
परमानन्द-रूपाऽसि, छाया चन्द्रस्य रोहिणी । शची शक्रस्य कामस्य, कामिनी रतिरीश्वरी ।।
वरुणानी जलेशस्य, वायोः स्त्री प्राण-वल्लभा । वह्नेः प्रिया या स्वाहा च, कुबेरस्य च सुन्दरी ।
यमस्य च सुशीला वै, नैर्ऋतस्य च कोटवी । ईशानस्य शशि-कला, शत-रूपा मनोः प्रिया ।।
देवहूतिः कर्दमस्य, वसिष्ठस्याप्यरुन्धती । अदितिर्देव-माता या, मुद्राऽगस्त्य - मुनेः प्रिया ।।
अहल्या गौतमस्यापि, सर्वाधारा वसुन्धरा । गङ्गा च तुलसी चापि, पृथिव्या याः सरिद्-वराः ।।
एताः सर्वाश्च या अन्याः, सर्वास्त्वत्-कलयाम्बिके! गृह-लक्ष्मीर्गृहे नृणां, राज-लक्ष्मीश्च राजसु ।।
तपस्विनां तपस्या त्वं, गायत्री ब्राह्मणस्य च । सतां सत्य-स्वरूपा त्वं, ह्यसतां कलहांकुरा ।।
ज्योति-रूपा निर्गुणस्य, शक्तिस्त्वं सगुणस्य च । सूर्ये प्रभा-स्वरूपा त्वं, दाहिका च हुताशने ।।
जले सत्य-स्वरूपा च, शोभा-रूपा निशाकरे । त्वं भूमौ गन्ध-रूपा च, गगने शब्द-रूपिणी ।।
स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वाग्-ज्ञान-शक्तिर्विपश्चितां । कृष्णेन विद्या या दत्ता, सर्व-ज्ञान-प्रसूः शुभा ।।
शूलिने कृपया सा त्वं, यतो मृत्युञ्जयः शिवः । सृष्टि-पालन-संहार-शक्तयस्त्रिविधाश्च याः ।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेशानां, सा त्वमेव नमोऽस्तु ते ।।
मधु-कैटभ-भीत्या च, त्रस्तो धाता प्रकंपितः । स्तुत्वा मुमोच यां देवीं, तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम् ।।
मधु-कैटभयोर्युद्धे, प्राप्तोऽसौ विष्णुरीश्वरीं । बभूव शक्तिमान् स्तुत्वा, यां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ।।
त्रिपुरस्य महा-युद्धे, स-रथे पतिते शिवे ! यां तुष्टुवः सुराः सर्वे, तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ।।
विष्णुना वृष-रूपेण, स्वयं शम्भुः समुत्थितः । जघान त्रिपुरं स्तुत्वा, यां दुर्गां तां नमाम्यहम् ।।
काल-चक्रं च जगति, शश्वद् भ्रमति वेगतः । मृत्युश्चरति जन्त्वोघे, तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ।।
स्रष्टा सृजति सृष्टं च, पाता पाति यदाज्ञया । संहर्ता हरते काले, तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ।।
ज्योतिः-स्वरूपो भगवांछ्री-कृष्णो निर्गुणः स्वयं, यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि तां ।
रक्ष-रक्ष जगन्मातस्त्वपराधान् क्षमस्व मे । शिशू-नामापराधेन, जातु माता न कुप्यति ।।

इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च, प्रणम्य तां रुरोद च । तुष्टा दुर्गा सम्भ्रमेण, चाभयं सा वरं ददौ ।।
'अमरो भव रे पुत्र, वत्स ! सु-स्थिरतां व्रज । मम प्रसादात् सर्वत्र, जयोऽस्तु तव सन्ततम्' ।।
सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टोऽस्तु सततं हरिः । भक्तिर्भवतु ते कृष्णे, शिवदे च शिवे गुरौ ।।
इष्ट-देवे गुरौ यस्य, भक्तिर्भवति शाश्वती । तं हन्तुं नहि शक्ता वै, रुष्टाश्च सर्व-देवताः ।।
श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं, शिष्यस्त्वं शंकरस्य च, गुरु-पत्न्याश्च भक्तो हि, कस्त्वां हन्तुं महेश्वरः ।
अहो न कृष्ण-भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । अन्य-देवेषु भक्ता वा, न भक्ता वा निरंकुशाः ।।
चंद्रमा बलवांस्तुष्टो, येषां भाग्य-वतां भृगो । तेषां तारा-गणा रुष्टाः, किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः ।।
यस्य तुष्टः सभायां, चेन्नर-देवो महान् सखा, तस्य किं वा करिष्यंति, रुष्टा भृत्याश्च दुर्बलाः ।
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा, दत्वा रामाय चाशिषम् । जगन्मातुः पुरस्तूर्णं, 'जय'-शब्दो बभूव ह ।।

।। फल-श्रुति ।।

कण्व-शाखोक्त-स्तोत्रं च, पूजा-काले हि यः पठेत् । यात्रा-काले च प्रातर्वा, वांछितार्थं लभते सः ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं, कन्यार्थी लभते सुताम् । विद्यार्थी लभते विद्यां, प्रजार्थी लभते प्रजाम् ।।
भ्रष्ट-राज्यो व्रजेद् राज्यं, धनं भ्रष्ट-धनो व्रजेत् ।
यस्य तुष्टो गुरुर्देवो, राजानो बान्धवास्तथा । तस्य तुष्टाश्च वरदाः, स्तोत्र-राज-प्रसादतः ।।
दस्यु-ग्रस्तो हिंस-ग्रस्तः, शत्रु-ग्रस्तो भयानकः ।व्याधि-ग्रस्तो भवेन्मुक्तः, स्तोत्र-स्मरण-मात्रतः ।
राज-द्वारे श्मशाने च, कारागारे च बन्धने । जल-राशौ निमग्नश्च, मुक्तो भवति मानवः ।।
स्वामि-भेदे पुत्र-भेदे, मित्र-भेदेऽति-दारुणे । स्तोत्र-स्मरण-मात्रेण, वाञ्छितार्थं लभेत सः ।।
कृत्वा हविष्यं वर्षं च, स्तोत्र-राजं शृणोति या । भक्त्या दुर्गां च सम्पूज्य, महा-वन्ध्या प्रसूयते ।।
लभते सा दिव्य-पुत्रं, ज्ञानिनं चिर-जीविनम्, असौभाग्याच्च सौभाग्यं, षण्मास-श्रवणाद् व्रजेत् ।
नव-मासं काक-वन्ध्या, मृत-वत्सा च भक्तितः । स्तोत्र-राजं या शृणोति, सा पुत्रं लभते ध्रुवं ।।
कन्या-माता पुत्र-हीना, पञ्च-मासं शृणोति या । घटे सम्पूज्य दुर्गां च, सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ।।

।। इति श्रीपरशुराम-प्रोक्तं दुर्गा-स्तोत्रं ।।

पूजा-काल, यात्रा-काल या प्रातः-काल जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे वाञ्छित कामना की प्राप्ति होती है । पुत्र की कामनावाला पुत्र को, कन्या चाहनेवाला पुत्री को, विद्यार्थी विद्या को, प्रजा चाहनेवाला प्रजा को, राज्य-भ्रष्ट राज्य को और धन - भ्रष्ट धन को प्राप्त करता है । स्तोत्र - राज के प्रसाद से गुरु-देव, राजा तथा बान्धव तुष्ट होते हैं और सन्तुष्ट होकर श्रेष्ठ दान देते हैं । डाकू से ग्रस्त, हिंसक पशुओं से ग्रस्त, भयानक शत्रु से ग्रस्त तथा भयङ्कर बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति स्तोत्र के स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है । राजा के द्वार पर, श्मशान में, कारागार में, बन्धन में और जल - राशि में डूबने पर मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है । स्वामी से विद्वेष, पुत्र से विद्वेष तथा मित्र से भयङ्कर विद्वेष होने पर स्तोत्र के स्मरण मात्र से वाञ्छित फल की उसे प्राप्ति होती है ।

एक वर्ष तक हवन करे, स्तोत्र-राज को सुने एवं भक्ति-पूर्वक श्रीदुर्गा का पूजन करे, तो महा-वन्ध्या भी सन्तान को जन्म देती है। उसे दिव्य पुत्र का लाभ होता है, जो ज्ञानी एवं चिरञ्जीवी होता है। असौभाग्यवती छः माह तक सुनकर सौभाग्य को प्राप्त करती है। काक-वन्ध्या तथा मृत-वत्सा नव मास तक भक्ति-पूर्वक स्तोत्र-राज को सुनकर निश्चित रूप से पुत्र को प्राप्त करती हैं। कन्या जन्म देने-वाली माता, पुत्र-हीन माता यदि पाँच मास तक इसे सुनें तथा घर में भगवती दुर्गा की भक्ति-पूर्वक पूजा करें, तो उन्हें निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त होता है।

* * *

(६४)

श्री अर्जुन-कृत दुर्गा-स्तवन

।। सञ्जय उवाच ।।

धार्तराष्ट्र - बलं दृष्ट्वा, युद्धाय समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय, कृष्णो वचनमब्रवीत् ।।१

।। श्रीभगवानुवाच ।।

शुचिर्भूत्वा महा-बाहो, संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां, दुर्गा - स्तोत्रमुदीरय ।।२

।। सञ्जय उवाच ।।

एवमुक्तोऽर्जुनः संख्ये, वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात् पार्थः, स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ।।३

।। अर्जुन उवाच ।।

नमस्ते सिद्ध - सेनानि, आर्ये मन्दर-वासिनि !
कुमारि कालि कापालि, कपिले कृष्ण-पिङ्गले ।।४
भद्र-कालि नमस्तुभ्यं, महा-कालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं, तारिणि वर-वर्णिनि ।।५
कात्यायनि महा-भागे, करालि विजये जये !
शिखि पिच्छ-ध्वज-धरे, नानाभरण - भूषिते ।।६
अट्ट - शूल - प्रहरणे, खड्ग - खेटक-धारिणि !
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे, नन्द-गोप-कुलोद्भवे ।।७
महिषासृक् - प्रिये नित्यं, कौशिकि पीत-वासिनि !
अट्टहासे कोक-मुखे, नमस्तेऽस्तु रण - प्रिये ।।८

उमे शाकम्भरि श्वेते, कृष्णे कैटभ-नशिनि !
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि, सु-धूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ।।९
वेद-श्रुति - महा - पुण्ये, ब्रह्मण्ये जात-वेदसि !
जम्बू - कटक - चैत्येषु, नित्यं सन्निहितालये ।।१०
त्वं ब्रह्म-विद्या विद्यानां, महा-निद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्द - मातर्भगवति, दुर्गे कान्तार-वासिनि ।।११
स्वाहाकारः स्वधा चैव, कला काष्ठा सरस्वती ।
सावित्री वेद-माता च, तथा वेदान्त उच्यते ।।१२
स्तुताऽसि त्वं महा-देवि ! विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जयो भवतु मे नित्यं, त्वत् - प्रसादाद् रणाजिरे ।।१३
कान्तार-भय - दुर्गेषु, भक्तानां चालयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले, युद्धे जयसि दानवान् ।।१४
त्वं जम्भिनी मोहिनी च, माया ह्रीः श्रीस्तथैव च ।
सन्ध्या प्रभावती चैव, सावित्री जननी तथा ।।१५
तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्य-विवर्धिनी ।
भूतिर्भूति-मतां संख्ये, वीक्ष्यसे सिद्ध-चारणैः ।।१६

।। सञ्जय उवाच ।।

ततः पार्थस्य विज्ञाय, भक्तिं मानव-वत्सला ।
अन्तरिक्ष-गतोवाच, गोविन्दस्याग्रतः स्थिता ।।१७

।। देव्युवाच ।।

स्वल्पेनैव तु कालेन, शत्रून् जेष्यसि पाण्डव !
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष, नारायण-सहाय-वान् ।।१८
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्र-भृतः स्वयम् ।

।। सञ्जय उवाच ।।

इत्येवमुक्ता वरदा, क्षणेनान्तरधीयत ।।१९
लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो, मेने विजयमात्मनः ।
आरुरोह ततः पार्थो, रथं परम-सम्मतम् ।।२०
कृष्णार्जुनावेक - रथौ, दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।

।। फल-श्रुति ।।

य इदं पठते स्तोत्रं, कल्य उत्थाय मानवः ।।२१
यक्ष-रक्षः - पिशाचेभ्यो, न भयं विद्यते सदा ।
न चापि रिपवस्तेभ्यः, सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ।।२२
न भयं विद्यते तस्य, सदा राज-कुलादपि ।
विवादे जयमाप्नोति, बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।।२३
दुर्गं तरति चावश्यं, तथा चोरैर्विमुच्यते ।
संग्रामे विजयेन्नित्यं, लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ।।२४
आरोग्य - बल - सम्पन्नो, जीवेद् वर्ष-शतं तथा ।
एतद् दृष्टं प्रसादात्तु, मया व्यासस्य धीमता ।।२५

।। इति श्रीमन्महा-भारते भीष्म-पर्वणि श्रीदुर्गा-स्तोत्रं ।।

जो मनुष्य प्रातः-काल इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे यक्ष, राक्षस और पिशाचों से कभी भय नहीं होता । विवाद में विजय प्राप्त होती है और बन्दी बन्धन से मुक्त हो जाता है । दुर्गम सङ्कट का निवारण होता है और चोरों से मुक्ति होती है । इतना ही नहीं, इस स्तोत्र का पाठ करनेवाला आरोग्य और बल से सम्पन्न होकर सौ वर्षों की आयु को प्राप्त करता है ।

◆

(९५)

श्री वाराही मन्त्र-प्रयोग

विनियोग : ॐ अस्य श्रीवाराही मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, सकल-वशीकरणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास : श्रीब्रह्मा ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, सकल-वशीकरणार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास : ॐ एहि अंगुष्ठाभ्यां नमः । परमेश्वरी तर्जनीभ्यां नमः । स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः । ॐ एहि अनामिकाभ्यां नमः । परमेश्वरी कनिष्ठिकाभ्यां नमः । स्वाहा कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्ग-न्यास : ॐ एहि हृदयाय नमः । परमेश्वरी शिरसे स्वाहा । स्वाहा शिखायै वषट् । ॐ एहि कवचाय हुं । परमेश्वरी नेत्र-त्रयाय वौषट् । स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान : नीलाञ्जन-गिरीन्द्राभ्यां, नाना-रत्न-विभूषिताम् ।
अश्वारूढां च वरदां, पाशांकुश - धरां शुभाम् ।
भीमामुग्रां महा-देवीं, खड्ग - खेटक - धारिणीम् ।
चतुर्भुजां तीक्ष्ण - दंष्ट्रां, दंष्ट्राग्रस्थ-वसुन्धराम् ।
जगत्-संहार-कारिणीं, साधकस्य वर-प्रदाम् ।।

इस प्रकार 'ध्यान' कर मानस-पूजा करे । भगवती वाराही का मन-ही-मन चिन्तन करते हुए स्तोत्र-पाठ करे । यथा–

।। स्तोत्र-पाठ ।।

अश्वारूढे रक्त - वर्णे, स्मित-सौम्य-मुखाम्बुजे !
राज-स्त्री - सर्व - जन्तूनां, वशीकरण - नायिके ।।
वशीकरण - कार्यार्थं, पुरा देवेन निर्मिता ।
तस्मादवश्यं वाराहि, सर्वान् मे वशमानय ।।
अन्तर्बहिश्च मनसि, व्यापारेषु सभासु च ।
यथा मामेव स्मरति, तथा देवि ! वशं कुरु ।।
चामरां दोलिकां छत्रं, राज-चिह्नानि यच्छति ।

अभीष्ट-सम्पदो राज्यं, रामाराज्यमथापि वा । मन्मथ स्मरद्रामा यान्ति रन्तु मया स्मह-स्त्री-रत्नेषु महत् प्रेम तथा जनय कामदे ! मृग-पक्ष्यादयः सर्वे, दृष्ट्या मां प्रेम-वीक्षिताः । अनुगच्छन्तु मामेव, त्वत्प्रसादात्तथा कुरु, वशीकरण-कार्यार्थं यत्र कुत्र प्रयुज्यते । सम्मोहनास्त्रं वर्षित्वा तत्, कार्यं तत्र वर्षय वशीकरण-बालास्त्रं भक्ता वाम-निवारितं तस्मादवश्यं वाराहि ! जगत्सर्वं वशं कुरु ।

वश्य-स्तोत्रमिदं देव्या, त्रि-सन्ध्यं यः पठेन्नरः । सोऽपि तत्-तत्क्षणाद् देव्या, राम-राज्यमवाप्नुयात् ।

।। इति श्रीवशीकरण वाराही-स्तोत्रं ।।

गुप्तावतार बाबाश्री के अप्रकाशित 'तन्त्र-संग्रह' से

(९६)

श्री शिव कवच

ॐ नमो भगवते सदा-शिवाय। त्र्यम्बक सदा-शिव ! नमस्ते नमस्ते । ॐ ह्लीं ह्लीं लूं अः जं एं ऐं महा-घोरेशाय नमः । ह्लीं ॐ ह्लौं शं नमो भगवते सदा-शिवाय ।

सकल-तत्त्वात्मकाय, आनन्द-सन्दोहाय, सर्वं-मन्त्र-स्वरूपाय, सर्व-यन्त्राधिष्ठिताय, सर्वं-तन्त्र-प्रेरकाय, सर्वं-तत्त्व-विदूराय, सर्वं - तत्त्वाधिष्ठिताय, ब्रह्म - रुद्रावतारिणे, नील-कण्ठाय, पार्वता-मनोहर-प्रियाय, महा-रुद्राय, सोम-सूर्याग्नि-लोचनाय, भस्मोद्धूलित-विग्रहाय, अष्ट-गन्धादि-गन्धोप-शोभिताय, शेषाधिप-मुकट-भूषिताय, महा-मणि-मुकुट-धारणाय, सर्पालङ्काराय, माणिक्य-भूषणाय, सृष्टि-स्थिति-प्रलय-काल-रौद्रावताराय, दक्षाध्वर-ध्वंसकाय, महा-काल-भेदनाय, महा-कालाधि-कालोग्र-रूपाय, मूलाधारैक-निलयाय ।

तत्वातीताय, गङ्गाधराय, महा-प्रपात-विष-भेदनाय, महा-प्रलयान्त-नृत्याधिष्ठिताय, सर्वं-देवाधि-देवाय, षडाश्रयाय, सकल-वेदान्त-साराय, त्रिवर्ग-साधनायानन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायकायानन्त-वासुकि-तक्षक-कर्कोटक-शङ्ख-कुलिक-पद्म-महा-पद्मेत्यष्ट-महा-नाग-कुल-भूषणाय, प्रणव-स्वरूपाय । ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः, हां हीं हूं हैं हौं हः ।

चिदाकाशायाकाशादि-दिक्-स्वरूपाय, ग्रह-नक्षत्रादि-सर्वं-प्रपञ्च-मालिने, सकलाय, कलङ्क-रहिताय, सकल-लोकैक-कर्त्रे, सकल-लोकैक-भर्त्रे, सकल-लोकैक-संहर्त्रे, सकल-लोकैक-गुरवे, सकल-लोकैक-साक्षिणे, सकल-निगम-गुह्याय, सकल-वेदान्त-पारगाय, सकल-लोकैक-वर-प्रदाय, सकल-लोकैक-सर्वदाय, शर्मदाय, सकल-लोकैक-शङ्कराय ।

शशाङ्क-शेखराय, शाश्वत - निजावासाय, निराभासाय, निराभयाय, निर्मलाय, निर्लोभाय, निर्मदाय, निश्चिन्ताय, निरहङ्काराय, निरंकुशाय, निष्कलङ्काय, निर्गुणाय ,

निष्कामाय, निरुपप्लवाय, निरवद्याय, निरन्तराय, निष्कारणाय, निरातङ्काय, निष्प्रपञ्चाय, निःसङ्गाय, निर्द्वन्द्वाय, निराधाराय, नीरागाय, निष्क्रोधाय, निर्मलाय, निष्पापाय, निर्भयाय, निर्विकल्पाय, निर्भेदाय, निष्क्रियाय, निस्तुलाय, निःसंशयाय, निरञ्जनाय, निरुपम-विभवाय, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-परिपूर्ण-सच्चिदानन्दाद्वयाय ॐ हसौं ॐ हसौः ह्रीं सौं क्षमलक्लीं क्षमल इस्फ्रि ऐं क्लीं सौः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः ।

परम-शान्त-स्वरूपाय, सोहं-तेजोरूपाय, हंस-तेजोमयाय, सच्चिदेकं ब्रह्म महा-मन्त्र-स्वरूपाय, श्रीं ह्रीं क्लीं नमो भगवते विश्व-गुरवे, स्मरण-मात्र-सन्तुष्टाय, महा-ज्ञान-प्रदाय, सच्चिदानन्दात्मने महा-योगिने सर्व-काम-फल-प्रदाय, भव - बन्ध - प्रमोचनाय, क्रों सकल-विभूतिदाय, क्रीं सर्व-विश्वाकर्षणाय ।

जय-जय रुद्र, महा-रौद्र, वीर-भद्रावतार, महा-भैरव, काल-भैरव, कल्पान्त-भैरव, कपाल-माला-धर, खट्वाङ्ग-खड्ग-चर्म-पाशांकुश-डमरु-शूल-चाप-बाण-गदा - शक्ति - भिन्दि-पाल-तोमर-मुसल-मुद्गर-पाश-वज्र-परिघ-भुशुण्डी-शतघ्नी-ब्रह्मास्त्र-पाशुपतास्त्रादि-महास्त्र-चक्रायुधाय ।

भीषण - कर, सहस्र-मुख-दंष्ट्रा-कराल-वदन, विकटाट्टहास, विस्फारित - ब्रह्माण्ड-मण्डल, नागेन्द्र-कुण्डल, नागेन्द्र-हार, नागेन्द्र - वलय, नागेन्द्र-चर्म-धर, मृत्युञ्जय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, विश्व-रूप, विरूपाक्ष, विश्वम्भर, विश्वेश्वर, वृषभ - वाहन, वृष - विभूषण, विश्वतोमुख ! सर्वतो मां रक्ष रक्ष, ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, स्फुर स्फुर, आवेशय आवेशय, मम हृदये प्रवेशय प्रवेशय, प्रस्फुर प्रस्फुर ।

महा - मृत्युमपमृत्यु-भयं नाशय नाशय, चोर - भयमुत्सादयोत्सादय, विष-सर्प-भयं शमय शमय, चौरान् मारय मारय, मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय, मम क्रोधादि-सर्व-सूक्ष्म-तमात् स्थूल-तम-पर्यन्त-स्थितान् शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय, त्रिशूलेन विदारय विदारय, कुठारेण भिन्धि भिन्धि, खड्गेन छिन्धि छिन्धि, खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय, मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय, बाणैः सन्ताडय सन्ताडय, रक्षांसि भीषय भीषय, अशेष - भूतानि विद्रावय विद्रावय, कूष्माण्ड-वेताल-मारीच-गण-ब्रह्म-राक्षस-गणान् सन्त्रासय सन्त्रासय, सर्व - रोगादि - महा-भयान्ममाभयं कुरु कुरु, वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय, नरक - महा - भयान्मामुद्धरोद्धर, सञ्जीवय सञ्जीवय, क्षुत्-तृषा-ईर्ष्यादि-विकारेभ्यो मामाप्याययाप्यायय, दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय, शिव-कवचेन मामाच्छादयाच्छादय ।

मृत्युञ्जय, त्र्यम्बक, सदा-शिव ! नमस्ते, नमस्ते, शं ह्रीं ॐ ह्रों ।

(९७)

सर्व-यन्त्र-मन्त्र-तन्त्रोत्कीलन-स्तोत्र

प्रस्तुत-कर्त्ता : पं० शिवकुमार शर्मा, मतवारी, दुरुग (म० प्र०)

।। पार्वत्युवाच ।।

देवेश, परमानन्द, भक्तानामभयं प्रद ! आगमाः निगमाश्चैव, बीजं बीजोदयस्तथा ।।
समुदायेन बीजानां, मन्त्रो मन्त्रस्य संहिता । ऋषिच्छन्दादिकं भेदो, वैदिकं यामलादिकम् ।।
धर्मोऽधर्मस्तथा ज्ञानं, विज्ञानं च विकल्पनं । निर्विकल्प-विभागेन, तथा षट्-कर्म-सिद्धये ।।
भुक्ति-मुक्ति-प्रकारश्च, सर्वं प्राप्तं प्रसादतः । कीलनं सर्व-मन्त्राणां, शंसयद् हृदये वचः ।।
इति श्रुत्वा शिवा-नाथः, पार्वत्या वचनं शुभं । उवाच परया प्रीत्या, मन्त्रोत्कीलनकं शिवां ।।

।। शिव उवाच ।।

वरानने ! हि सर्वस्य, व्यक्ताव्यक्तस्य वस्तुनः । साक्षी-भूय त्वमेवासि, जगतस्तु मनोस्तथा ।।
त्वया पृष्टं वरारोहे ! तद् वक्ष्याम्युत्कीलनं । उद्दीपनं हि मन्त्रस्य, सर्वस्योत्कीलनं भवेत् ।।
पुरा तव मया भद्रे ! समाकर्षण-वश्यजा । मन्त्राणां कीलिता-सिद्धिः, सर्वे ते सप्त-कोटयः ।।
तवानुग्रह-प्रीतस्त्वात्, सिद्धिस्तेषां फल-प्रदा । येनोपायेन भवति, तं स्तोत्रं कथयाम्यहम् ।।
शृणु भद्रेऽत्र सततमावाभ्यामखिलं जगत् । तस्य सिद्धिर्भवेत् तिष्ठे, माया येषां प्रभावकम् ।।
अन्नं पानं हि सौभाग्यं, दत्तं तुभ्यं मया शिवे ! सञ्जीवनं च मन्त्राणां, तथा दत्तुं पुनर्ध्रुवम् ।।
यस्य स्मरण-मात्रेण, पाठेन जपतोऽपि वा । अकीला अखिला मन्त्राः, सत्यं सत्यं न संशयः ।।

विनियोग—ॐ अस्य सर्व-यन्त्र-मन्त्र-तन्त्राणामुत्कीलन-मन्त्र-स्तोत्रस्य मूल-प्रकृतिः ऋषिः, जगतीच्छन्द , निरञ्जनो देवता, क्लीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, ह्लः सौं कीलकं, सप्त-कोटि-मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-कीलकानां सञ्जीवन-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—-ॐ मूल-प्रकृति-ऋषये नमः शिरसि । ॐ जगतीच्छन्दसे नमः मुखे । ॐ निरञ्जन-देवतायै नमः हृदि । ॐ क्लीं-बीजाय नमः गुह्ये । ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः । ॐ ह्लः सौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे । ॐ सञ्जीवन-सिद्धयर्थे जपे बिनियोगाय नमः अञ्जलौ ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ ह्लां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ह्लीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ ह्लूं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ ह्लैं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ ह्लौं	कनिष्ठाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ ह्लः	करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यान—ॐ ब्रह्म-स्वरूपममलं च निरञ्जनं तं, ज्योतिः - प्रकाशमनिशं महतो महान्तम् ।
कारुण्य - रूपमति - बोध - करं प्रसन्नं, दिव्यं स्मरामि सततं मनु - जीवनाय ।।

एवं ध्यात्वा स्मरेन्नित्यं, तस्य सिद्धिस्तु सर्वदा । वाञ्छितं फलमाप्नोति, मन्त्र-संजीवनं ध्रुवम् ।।

मन्त्र—ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लीं सर्व - मन्त्र - यन्त्र - तन्त्रादीनामुत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा । (जपं कुर्यात्)

ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लीं षट्-पञ्चाक्षराणामुत्कीलय उत्कीलय स्वाहा । ॐ जूं सर्व-मन्त्र-यन्त्र-तन्त्राणां सञ्जीवनं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्लीं जूं, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः, कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं, यं रं लं वं, शं षं सं हं ळं क्षं । मात्राऽक्षराणां सर्वं उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ सोऽहं हंसोऽहं ११, ॐ जूं सोहं हंसः ॐ ॐ ११, हं जूं हं सं गं ११, सोऽहं हंसो यं ११, लं ११, ॐ ११, यं ११, ॐ ह्लीं जूं सर्व-मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-स्तोत्र-कवचादीनां सञ्जीवय सञ्जीवय कुरु कुरु स्वाहा । ॐ सोऽहं हंसः ॐ सञ्जीवनं स्वाहा । ॐ ह्लीं मन्त्राक्षराणामुत्कीलय, उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ॐ प्रणव-रूपाय, अं आं परम-रूपिणे । इं ईं शक्ति-स्वरूपाय, उं ऊं तेजो-मयाय च ।।
ऋंॠं रंजित-दीप्ताय, लृं लॄं स्थूल-स्वरूपिणे, एंऐं वाचां विलासाय, ओंऔं अंअः शिवाय च ।।
कं खं कमल-नेत्राय, गं घं गरुड़-गामिने । ङं चं श्री चन्द्र-भालाय, छं जं जय-कराय च ।।
झं ञं टं ठं जय-कर्त्रे, डं ढं णं तं पराय च । थं दं धं नं नमस्तस्मै, पं फं यन्त्र-मयाय च ।।
बं भं मं बल-वीर्याय, यं रं लं यशसे नमः । वं शं षं बहु-वादाय, सं हं ळं क्षं-स्वरूपिणे ।।
दिशामादित्य-रूपाय, तेजसे रूप - धारिणे । अनन्ताय अनन्ताय, नमस्तस्मै नमो नमः ।।

मातृकायाः प्रकाशायै, तुभ्यं तस्यै नमो नमः । प्राणेशायै क्षीणदायै, सं सञ्जीव नमो नमः ।।
निरञ्जनस्य देवस्य, नाम-कर्म-विधानतः । त्वया ध्यानं च शक्त्या च, तेन सञ्जायते जगत् ।।
स्तुतामहमचिरं ध्यात्वा, मायाया ध्वंस-हेतवे । सन्तुष्टा भार्गवायाहं, यशस्वी जायते हि सः ।।

ब्रह्माणं चेतयन्ती विविध - सुर - नरास्तर्पयन्ती प्रमोदाद् ।
ध्यानेनोद्दीपयन्ती निगम - जप - मनुं षट्-पदं प्रेरयन्ती ।।
सर्वान् देवान् जयन्ती दिति-सुत-दमनी साऽप्यहङ्कार-मूर्ति–
स्तुभ्यं तस्मै च जाप्यं स्मर-रचितमनुं मोचये शाप-जालात् ।।
इदं श्रीत्रिपुरा - स्तोत्रं पठेद् भक्त्या तु यो नरः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति सर्व - शापाद् विमुच्यते ।।

सप्तशती (पद्यानुवाद) के प्रयोग

(९८)

देवी से इस प्रकार वर पा, सुरथ श्रेष्ठ क्षत्रिय बल-धाम ।
सूर्य-देव से जन्म प्राप्त कर, होंगे मनु सावर्णि ललाम ।।

विधि : कार्य के अनुसार इस पद्य का एक लाख, दस हजार, एक हजार अथवा सौ बार 'जप' करने से सभी प्रकार के उद्देश्यों की सिद्धि होती है ।

(९९)

ज्ञानी लोगों के भी मन को, बल-पूर्वक करके आकृष्ट ।
श्रीभगवती महा-माया वह, करती मोहित है यह सत्य ।।

विधि : इस पद्य का जिस व्यक्ति को लक्ष्य करके 'यथा-शक्ति 'जप' किया जाता है, वह व्यक्ति 'जप'-कर्त्ता की ओर आकृष्ट होकर उसके अनुकूल हो जाता है ।

(१००)

सारे रोग नाश हो करतीं, जब तुम होती हो सन्तुष्ट ।
सकल अभीष्ट ध्वंस कर देतीं, हो जातीं यदि कुछ भी रुष्ट ।।

विधि : इस पद्य का यथा-शक्ति नित्य 'जप' करने से रोगों का नाश होता है ।

* * *

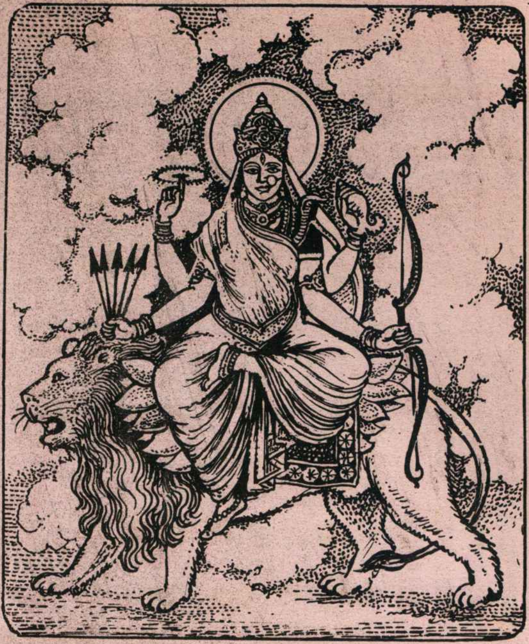

इस नव-रात्र की भावना

वर्तमान काल में आसन्न भविष्य को ध्यान में रखते हुए आस्तिक बन्धुओं की दशा बहुत कुछ वैसी ही प्रतीत होती है, जैसी देवासुर - संग्राम काल में देवताओं की रही है। अतः उस समय श्री जगदम्बा के आविर्भाव की जो भावना श्रीदुर्गा सप्तशती में दी है, उसको हृदयङ्गम करना ही इस पवित्र 'नवरात्र'-काल में श्रेयस्कर होगा। आशा है, 'चण्डी' के पाठक श्रीदुर्गा सप्तशती के दूसरे अध्याय के-'कर पैदा अपने त्रिशूल से, शिव ने किया त्रिशूल प्रदान' से लेकर 'नाग-हार ला दिया शेष ने, तब नागों के पति सुख मान ' तक के १९ से २९ तक के श्लोकों का पाठ कर ऐक्य-शक्तिके महत्व की भावना को कार्य-रूप में परिणत करने को तत्पर होंगे ।

साधक बन्धु अपने नित्य की साधना के पूर्व स्व-राष्ट्र-कल्याणार्थ सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ का संकल्प कर तीन/पाँच/सात/ पाठ करेंगे, तो उत्तम भविष्य साकार हो सकेगा ।

स्व-राष्ट्र-कल्याणार्थ सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ संकल्प

ॐ तत्सत् अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि, द्वितीय-प्रहरार्द्धे, श्वेत-वराह-कल्पे, जम्बू-द्वीपे, भरत-खण्डे, अमुक प्रदेशे, कलि-युगे, कलि-प्रथम-चरणे, 'व्यय'-नाम सम्बत्सरे, चैत्र-मासे, शुक्ल-पक्षे, प्रतिपदायां तिथौ, बुध-वासरे, अमुक-गोत्रोत्पन्नो, अमुक-नाम (शर्मा,वर्मा,दास), श्रीमहाकाली - महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवता-प्रीति-पूर्वक स्व-राष्ट्र-कल्याणार्थे मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गतं सावर्णिक - मन्वन्तरीय देवी-माहात्म्यस्य सप्त - श्लोकी - चण्डी-पाठमहं करिष्यामि ।

रजि० संख्या
32981/57

फाल्गुन, २०४९ वि० - मार्च, १९९३

रजि० संख्या
AD~96

'दुर्गा'-नाम का अर्थ

'द'-कार, 'उ'-कार, रेफ, 'ग'-कार और 'आ'-कार इन वर्णों के योग से मन्त्र-स्वरूप 'दुर्गा' नाम बनता है।

'दुर्गा' का अर्थ इस प्रकार है —

दैत्यों (असुरों) के नाश के अर्थ को 'द'-कार बतलाता है। 'उ'-कार, विघ्न का नाशक है। 'र'-कार, रोग का नाशक है। 'ग'-कार पाप का नाशक है और 'आ'-कार भय तथा शत्रु का विनाशक है।

इस प्रकार 'दुर्गा' नाम अपने अर्थ का यथार्थ बोधक है।

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा
चण्डी - कार्यालय, परावाणी प्रेस, प्रयाग २११००६